माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमालाया अष्टादशो ग्रन्थः ।

नमो वीतरागाय ।

प्रायश्चित्त-संग्रहः ।

सम्पादकः संशोधकश्च—

पण्डित-पन्नालाल-सोनीति ।

प्रकाशिका—

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला-समितिः ।

श्रावण, वीर निर्वाणाब्दः २४४७ ।
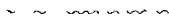
विक्रमाब्दः १९७८ ।

प्रथमावृत्ति ।]

ग्रन्थ-परिचय ।

इस संग्रहमें प्रायश्चित्त-विषयक चार ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं । अभी तक इस विषयका कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था और न इस विषयके हस्तलिखित ग्रन्थ ही सर्वत्र सुलभ हैं । अत एव जैनधर्मके जिज्ञासुओंके लिए यह संग्रह बिल्कुल ही अपूर्व होगा । इसके द्वारा एक ऐसे विषयकी जानकारी होगी जिससे जैन-धर्मके बड़े बडे विद्वान् भी अपरिचित हैं ।

छेदपिण्ड, छेदशास्त्र, प्रायश्चित्त-चूलिका और अकलङ्क-प्रायश्चित्त ये चार ग्रन्थ इस सग्रहमें हैं । 'छेद' शब्द प्रायश्चित्तका ही पर्यायवाची है ।

१-छेदपिण्ड ।

यह ग्रन्थ प्राकृतमें है । इसकी सस्कृतच्छाया श्रीयुत पं० पन्नालालजी सोनी द्वारा कराई गई है । ग्रन्थके अन्तकी गाथा (न० ३६०) के अनुसार इसका गाथापरिमाण ३३३ और श्लोक (अनुष्टुप्) परिमाण ४२० होना चाहिए, परन्तु वर्तमान ग्रन्थकी गाथासख्या ३६२ है । जान पडता है कि उक्त ३६० नम्बरकी गाथाका पाठ लेखकोकी कृपासे कुछ अशुद्ध हो गया है । उसमें 'तेतीसुत्तर,' की जगह 'वासट्ठित्तुर,' या इसीसे मिलता जुलता हुआ कोई और पाठ होना चाहिए । क्यो कि ३२ अक्षरोके श्लोकके हिसाबसे अब भी इसकी श्लोकसख्या ४२० के ही लगभग है और ३३३ गाथाओंके ४२० श्लोक हो भी नहीं सकते हैं । अन्यान्य प्रतियोंके देखनेसे इस भ्रमका सशोधन हो जायगा ।

इस ग्रन्थका सशोधन दो प्रतियो परसे किया गया है, एक जयपुरके पाटोदीके मंदिरकी प्रतिपरसे—जो प्राय: शुद्ध है—और दूसरी 'डा० भाण्डारकर—ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट' पूनेकी प्रतिपरसे—जो बहुत ही अशुद्ध है । ग्रन्थके छप चुकने पर श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी कृपासे हमें इन्द्रनन्दिसंहिताकी भी एक प्रति मिली जो उन्होंने दिल्लीसे लिखवा कर भेजी थी । परन्तु वह बहुत ही अशुद्ध लिखी गई है, इस कारण उससे कोई सहायता नहीं ली जा सकी ।

यह ग्रन्थ इन्द्रनन्दि-संहिताका चौथा अध्याय अथवा उसका एक भाग है,

परन्तु अनेक पुस्तकालयोंमें यह स्वतत्र रूपसे भी मिलता है । इसके कर्त्ता इन्द्र-नन्दि योगीन्द्र हैं, जो सभवत. नन्दिसघके आचार्य थे । यह नहीं मालूम हो सका कि उनके गुरुका क्या नाम था और वे निश्चय रूपसे कब हुए हैं ।

अय्यपार्य नामके एक विद्वान्ने शकसवत् १२४१ (शाकाब्दे विधुवार्धिनेत्रहिमगौ सिद्धार्थसवत्सरे) में ' जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय ' नामका संस्कृत ग्रन्थ बनाया है । उसकी प्रशस्तिमें लिखा है —

> वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो,
> य पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जित ।
> यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धिस्तत ,
> तेभ्य. स्वाहृत्सारमध्यरचित. स्याज्जैनपूजाक्रम ॥

अर्थात् वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर हस्तिमल्ल और एकसन्धिके ग्रन्थोंसे सार भाग लेकर मैंने यह पूजाक्रम रचा है । इससे मालूम होता है कि अय्यपार्यसे पहले उक्त आचार्योंके ऐसे ग्रन्थ वर्तमान थे जिनमे पूजाविषयक विधान थे अथवा जो केवल पूजाविषयक ही थे और उनमे इन्द्रनन्दिका भी कोई पूजाग्रन्थ था । और ऐसी अवस्थामें इन्द्रनन्दिका समय शक सवत् १२४१ अर्थात् विक्रमसवत् १३७६ के पहले निश्चित होता है ।

यह छेदपिण्ड जिस इन्द्रनन्दिसहिताका एक भाग है, उसमें भी एक अध्याय पूजाविषयक है और उसका नाम पूजाप्रक्रम है । इससे यही खयाल होता है कि अय्यपार्यने जिनका उल्लेख किया है वे यही इन्द्रनन्दि होगे । परन्तु इसी इन्द्र-नन्दिसहिताके दायभाग प्रकरणकी अन्तिम गाथाओंसे इस विषयमे कुछ सन्देह हो जाता है । वे गाथायें ये हैं —

> पुव्वं पुज्जविहाणं जिणसेणाइवीरसेणगुरुजुत्तइ ।
> पुज्जस्सयाय (?) गुणभद्दसूरिहिं जह तहुद्दिट्ठा ॥ ६६ ॥
> वसुणंदि-इंदणंदि य तह य मुणी एयसंधि गणिनाहं (हि)
> रचिया पुज्जविही या पुव्वक्कमदो विणिद्दिट्ठा ॥ ६४ ॥
> गोयम-समंतभद्द य अयलक सु माहणंदिमुणिणाहिं ।
> वसुणंदि-इंदणंदिहिं रचिया सा संहिता पमाणाहु ॥ ६५ ॥

सहिताकी जिस प्रतिसे हमने ये गाथायें लिखी हैं वह बहुत ही अशुद्ध है और इस कारण यद्यपि इनसे पूरा पूरा और स्पष्ट अर्थावबोध नहीं होता है, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि इस इन्द्रनन्दिसहितासे भी पहले कोई इन्द्रनन्दिसहिता थी, जिसे इस सहिताके कर्त्ता प्रमाण माननेको कहते हैं और इन्द्रनन्दिका बनाया हुआ कोई पूजाग्रन्थ भी था। यदि यह ठीक है और हमारे समझनेमे कोई भ्रम नहीं है तो फिर छेदपिण्डके कर्त्ताका समय अय्यपार्यके पहले नहीं माना जा सकता।

इन गाथाओंमे वसुनन्दि, एकसन्धि, और माघनन्दिका भी नाम आया है। इनमेसे वसुनन्दिका समय विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके लगभग निश्चित किया जा चुका है और एकसन्धि वसुनन्दिसे भी कुछ पीछे हुए है। अब रहे माघनन्दि, सो यदि वे कुन्दकुन्दाचार्यसे पहले कहे जानेवाले सुप्रसिद्ध माघनन्दि आचार्य नहीं है और दूसरे माघनन्दि हैं जिन्होंने माघनन्दिश्रावकाचार नामक सस्कृत-कनडी ग्रन्थकी रचना की है और जिनकी बनाई हुई एक सहिताका भी उल्लेख स्व० बाबा दुलीचन्दजीने अपनी ग्रन्थसूचीमें किया है, तो उनका समय कर्नाटक-कविचरित्रके कर्त्ताने वि० सवत् १३१७ निश्चय किया है और ऐसी दशामे छेद-पिण्डके कर्त्ताका समय उनसे पीछे विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके बाद मानना होगा। परन्तु जब तक यह पूर्णरूपसे निश्चय न हो जाय कि कर्नाटक-कविचरित्रके कर्त्ताने जिनका समय निश्चित किया है, उन्हींका उल्लेख सहिताकी उक्त गाथाओंमें है, तब तक इस पिछले समय पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता। फिर भी यह बात तो निस्सन्देह कही जा सकती है कि छेदपिण्डके कर्त्ता विक्रमकी १२ वीं शताब्दिके पहलेके तो कदापि नहीं है।

जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय और इन्द्रनन्दिसहिताके पूर्वोक्त श्लोकों और गाथा-ओंमें जिन जिन आचार्योंका उल्लेख है, उनमेंसे नीचे लिखे आचार्योंके पूजा और सहिता-ग्रन्थोंका अस्तित्व अभीतक है, ऐसा स्वर्गीय बाबा दुलीचन्दजीकी सस्कृत ग्रन्थ-सूचीसे मालूम होता है। यह सूची हमने जेठ सुदी रविवार सवत् १९५४ की

१ देखो जैनहितैषी भाग १२, पृ० १९२।

२ शास्त्रसारसमुच्चय नामका ग्रन्थ भी माघनन्दि आचार्यका बनाया हुआ है। यह माणिकचन्द्रग्रन्थमालामे शीघ्र ही छपेगा।

लिखी हुई प्रतिपरसे नकल की थी। हम नहीं कह सकते कि यह सूची कहाँ तक प्रामाणिक है, फिर भी सुना गया है कि बाबाजीने जगह जगहके ग्रन्थभाण्डारोंको स्वय देखकर इसे तैयार किया था। कई ग्रन्थोंके नामके साथ यह भी लिखा है कि उक्त ग्रन्थ अमुक जगह मौजूद है।

१ **वीरसेनस्वामी** ... पूजाकल्प।
२ **वसुनन्दिस्वामी** ... सहिता।
३ **माघनन्दि** .. ... सहिता (वृन्दावनके घर है)।
४ **जिनसेन** . पूजाकल्प, पूजासार।
५ **इन्द्रनंदि** ... ... पूजाकल्प (सस्कृत), सहिता।
६ **गुणभद्र** ... ... पूजाकल्प।
७ **देवनन्दि** (पूज्यपाद)... पूजाकल्प।
८ **एकसन्धि** .. पूजाकल्प।
९ **हस्तिमल्ल** .. .. गणधरवलय–पूजाकल्प।

इनमेसे वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र और पूज्यपादके पूजाविषयक स्वतन्त्र ग्रन्थोका उल्लेख अभी तक किसी भी ग्रन्थमें देखनमें नहीं आया है। इस लिए इस बातकी बडी भारी आवश्यकता है कि उक्त ग्रन्थ सग्रह किये जायँ और उनका अच्छी तरह स्वाध्याय किया जाय। सभव है कि वीरसेन, जिनसेन आदि नामोके धारक अन्य आचार्योंने इनकी रचना की हो। क्योंकि हमारे यहाँ एक नामके अनेक आचार्य होते रहे हैं।

इन्द्रनन्दि नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं। उनमेसे एक तो वे हैं जिनका उल्लेख गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ३९६ वीं गाथामें किया गया है और जिनके पास सिद्धान्तग्रन्थोंका श्रवण करके कनकनन्दि मुनिने 'सत्त्वस्थान' की रचना की है:—

> **वर इंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।**
> **सिरिकणयणंदिमुणिणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥ ३९६॥**

गोम्मटसारके कर्ताका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दि है, अतएव ये इन्द्रनन्दि लगभग इसी समयके आचार्य हैं।

श्रवणबेल्गोलकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें लिखा है:—

दुरितग्रहनिग्रहाद्भयं यदि भो भूरिनरेन्द्रवन्दितम् ।
ननु तेन हि भव्यदेहिनो भजत श्रीमुनिमिन्द्रनन्दिनम् ।

यह प्रशस्ति शक संवत् १०५० (वि० सं० ११८५) में उत्कीर्ण की गई है, अत संभव है कि गोम्मटसारोल्लिखित इन्द्रनन्दि, और इस प्रशस्तिमें जिनकी प्रशंसा की गई है वे इन्द्रनन्दि, दोनों एक ही हों ।

'श्रुतावतार' के कर्ता भी इन्द्रनन्दि नामके आचार्य हैं । हमारा अनुमान है कि ये भी गोम्मटसार और मल्लिषेणप्रशस्तिके इन्द्रनन्दिसे अभिन्न होंगे । क्यों कि श्रुतावतारमें वीरसेन और जिनसेन[1] आचार्य तककी ही सिद्धान्त-रचनाका उल्लेख है । यदि वे नेमिचन्द्र आचार्यसे पीछे हुए होते, तो बहुत संभव है कि गोम्मटसारका भी उल्लेख करते ।

नीतिसार (समयभूषण) के कर्ता भी इन्द्रनन्दि नामके आचार्य हैं, परन्तु वे गोम्मटसारके कर्ताके पीछे हुए हैं, क्यों कि उन्होंने नीतिसारके ७० वें श्लोकमें नेमिचन्द्रका उल्लेख किया है (प्रभाचन्द्रो नेमिचन्द्र इत्यादि मुनिसत्तमै)। अत एव वे पहले इन्द्रनन्दि तो नहीं हो सकते । बहुत संभव है कि वे और इस इन्द्रनन्दिसंहिताके कर्ता एक ही हों ।

२–छेदशास्त्र ।

इसका दूसरा नाम 'छेदनवति' भी है । क्यों कि इसमें नवति या ९०[2] गाथायें हैं । यह भी प्राकृतमें है । इसके साथ एक छोटीसी वृत्ति भी है । परन्तु इससे न तो मूलग्रन्थके कर्त्ताका नाम मालूम हो सकता है और न वृत्तिके कर्त्ताका । और ऐसी दशामें इसके बननेका समय तो निश्चित ही क्या हो सकता है । इस ग्रन्थका भी सम्पादन और संशोधन केवल एक ही प्रतिके आधारसे हुआ है और यह प्रति बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरका वह प्राचीन गुटका है जो अतिशय जीर्ण शीर्ण गलितपृष्ठ होकर भी प्राय. शुद्ध है और हमारे अनुमानसे जो ४००–५००

---

(१) श्रुतावतारके मुद्रित पाठमें जिनसेनके बदले 'जयसेन' है ।

(२) मुद्रित ग्रन्थ ९४ गाथाओंमें है ।

वर्ष पहलेका लिखा हुआ है। इसकी दूसरी प्रति प्रयत्न करनेपर भी कहीं प्राप्त न हो सकी।

इसकी भी संस्कृतच्छाया पं० पन्नालालजी सोनीद्वारा कराई गई है।

३–प्रायश्चित्त-चूलिका[1]।

यह ग्रन्थ संस्कृतमें है और सटीक है। मूल ग्रन्थकी श्लोकसंख्या १६६ है। यह भी केवल एक ही प्रतिके आधारसे छपाया गया है और वह प्रति पूनेके 'भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट' की है जो प्रायः अशुद्ध है और संवत् १९४२ की लिखी हुई है। दूसरी प्रति नहीं मिल सकी।

इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें लिखा है —

> यः श्रीगुरूपदेशेन प्रायश्चित्तस्य संग्रहः।
> दासेन श्रीगुरोर्हब्धो भव्याशयविशुद्धये॥ १
> तस्यैषाऽनूदिता वृत्तिः श्रीनन्दिगुरुणा हि सा।
> विरुद्धं यदभूदत्र तत्क्षाम्यतु सरस्वती॥ २

इससे मालूम होता है कि मूलग्रन्थके कर्ता श्रीगुरुदास हैं और वृत्तिके कर्ता श्रीनन्दिगुरु हैं। मूलकर्ताका नाम बिल्कुल अपरिचितसा और विलक्षणसा मालूम होता है। बल्कि हमें तो इसके नाम होनेमें सन्देह होता है। 'दासेन' और 'श्रीगुरोः' ये दो पद अलग अलग पड़े हुए हैं और इनका अर्थ यही होता है, कि श्रीगुरुके दासने बनाया। आश्चर्य नहीं जो टीकाकारको मूलकर्ताका नाम न मालूम हो और उन्होंने साधारण तौरसे यह लिख दिया हो कि यह श्रीगुरुके एक दासका बनाया हुआ है और मैं इसकी वृत्ति रचता हूँ। और यदि 'श्रीगुरुदास' यह नाम ही है, तो हम अभी तक उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते हैं। इस नामके किसी भी आचार्यका नाम देखने सुननेमें नहीं आया। टीकाके कर्ता श्रीनन्दि गुरु हैं।

धाराधीश महाराज भोजके समयमें श्रीचन्द्र नामके एक विद्वान् हो गये हैं।

---

(१) परिकर्म-सूत्र-पूर्वानुयोग-पूर्वगत-चूलिकाः पञ्च। स्युर्दृष्टिवादभेदाः —
—अभिधानचिन्तामणि।

उनका ' पुराणसार ' नामका एक ग्रन्थ है। वह विक्रम सवत् १०७० का बना हुआ है। उसकी प्रशस्तिमे उन्होने लिखा है कि मागरसेन नामक आचार्यसे महापुराण पढ़कर श्रीनन्दिके शिष्य मुझ श्रीचन्द्र मुनिने यह ग्रन्थ बनाया। इसी तरह आचार्य वसुनन्दिने अपने श्रावकाचारमें भी एक श्रीनन्दिका उल्लेख किया है जो उनकी गुरुपरम्परामे थे।—श्रीनन्दि-नयनन्दि-नेमिचन्द्र और वसुनन्दि। वसुनन्दिका समय बारहवीं शताब्दि है, अत उनके दादा गुरुके गुरु अवश्य ही उनसे १०० वर्ष पहले हुए होगे और इस तरह सभवत श्रीचन्द्रके गुरु और वसुनन्दिके परदादा-गुरु एक ही होगे।

यदि प्रायश्चित्तटीकाके कर्त्ता श्रीनन्दिगुरु और श्रीचन्द्रके गुरु श्रीनन्दि एक ही हो, तो कहना होगा कि यह टीका विक्रमकी ११ वीं शताब्दिकी बनी हुई है[२]। और ऐसी दशामें मूल ग्रन्थ उससे भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

४-प्रायश्चित्त ग्रन्थ।

यह ग्रन्थ श्रीयुक्त प० लालारामजी शास्त्रीकी लिखी हुई एक प्रतिके आधारसे ही छपाया गया है। इसकी भी कोई दूसरी प्रति नहीं मिल सकी। इसमे केवल श्रावकोंके प्रायश्चित्तका निरूपण है और इसकी श्लोकसख्या ८८ है। इसमें कोई प्रशस्ति आदि नहा हे। केवल आदि और अन्तमें इसके कर्ताका नाम श्रीमद्भट्टाकलकदेव बतलाया गया हुआ है, परन्तु जान पडता है कि ये तत्त्वार्थ-राजवार्तिक आदि महान् ग्रन्थोके कर्त्ता अकलकदेवसे भिन्न कोई दूसरे ही विद्वान् होगे और आश्चर्य नही यदि अकलक-प्रतिष्ठापाठके कर्ता ही इसके रचयिता हो। यह निश्चय हो चुका है कि अकलकप्रतिष्ठापाठके कर्त्ता १५ वीं शताब्दिके बाद हुए हैं[३]। उन्होंने आदिपुराण, ज्ञानार्णव, एकासन्धिसंहिता, सागार-धर्मामृत, आशाधर-प्रतिष्ठापाठ, ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचार, नेमिचन्द्र-प्रतिष्ठापाठ आदि

---

(१) बाबा दुलीचन्दजीकी सूचीमें श्रीनन्दि मुनिके एक ' यतिसार ' नामक सटीक ग्रन्थका उल्लेख है। उसमें यह लिखा है कि यह ग्रन्थ जयपुरमें मौजूद है।

(२) जैनहितैषी भाग १४ पृष्ठ ११८-१९ में बाबू जुगलकिशोरजीने इस विषय पर एक विस्तृत नोट दिया है।

(३) देखो जैनहितैषी भाग १३, पृष्ठ १२२-२६।

ग्रन्थोंके बहुतसे पद्य अपने ग्रन्थमें दिये हैं। अत एव वे इन सब ग्रन्थकर्त्ताओंसे पीछेके विद्वान् हैं, यह कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता।

इस ग्रन्थकी रचना-शैलीसे भी मालूम होता है कि न तो यह उतना प्राचीन ही है और न भट्ट अकलङ्कदेवकी रचनाओंके समान इसमें कोई प्रौढता ही है। इसका 'मोक्कुला' शब्द—जो बीसों जगह आया है—संस्कृत नहीं किन्तु देश-भाषाका है और भद्रबाहु-संहिता (खण्ड १, अ० १०) में भी यह 'मोकला' रूपमें व्यवहृत हुआ है। गुजराती और मारवाडीमें 'मोकला' शब्द विपुलता या अधिताका वाचक है। लघु अभिषेक और मोकला अर्थात् बड़ा अभिषेक। कर्नाटक देशके भट्ट अकलकदेवकी रचनामें इस शब्दका प्रयोग असंगत ही दिखता है। और भी ऐसी कई बातें हैं जिनसे इसकी अर्वाचीनता प्रकट होती है। जैसे अनेक अपराधोंके दण्डमें गौओंका दान और ताम्बूलदान। जहाँ तक हम जानते हैं अनेक आचार्योंने 'गौ-दान' का निषेध किया है। इसके सिवाय इस ग्रन्थका पहले तीन प्रायश्चित्त-ग्रन्थोंके साथ मतभेद भी मालूम होता है, उदाहरणके लिए इसका यह श्लोक देखिए:—

जननीतनुजादीनां चाण्डालादिस्त्रियामपि।
संभोगे सति शुद्ध्यर्थं पंचाशदुपवासका॥

इसके अनुसार माता पुत्री चाण्डाली आदिके साथ व्यभिचार करनेवालेको पंचाशत् उपवास करना चाहिए, परन्तु अन्य तीनों प्रायश्चित्त-ग्रन्थोंमें इस पापका प्रायश्चित्त ३२ उपवास लिखा है। इसी तरह अन्यान्य पापोंके प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें भी मतभेद है। विद्वानोंको इस मतभेद पर भी खास तौरसे विचार करना चाहिए।

अन्तमें मैं इतना और कहकर अपने निवेदनको समाप्त करूँगा कि ग्रन्थ-कर्ताओंके समय-निर्णयका मैंने जो यह प्रयत्न किया है वह अपनी छोटीसी बुद्धिके अनुसार किया है। बहुत संभव है कि मेरे अनुमान गलत हों और ऐसी दशामें मैं अपनी भूलोंको सुधारनेके लिए सदा तत्पर हूँ। परन्तु कोई महाशय यह समझ लेनेकी कृपा न करें कि मैं जान बूझकर किसीको प्राचीन या अर्वाचीन ठहरानेका प्रयत्न करता हूँ। मैं ऐसे प्रयत्नको बहुत ही घृणित समझता हूँ।

बम्बई,
आषाढ सुदी ३
सं० १९७८ वि०।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी।

माणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला ।

यह ग्रन्थमाला स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचन्दजीके स्मरणार्थ और जैनसाहित्यके उद्धारार्थ निकाली गई है ।

इसमें दिगम्बर जैन सम्प्रदायके अलभ्य और दुर्लभ संस्कृत प्राकृत ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं ।

इसके द्वारा प्रकाशित हुए ग्रन्थ केवल लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं, जिससे उनका मिलना सर्व साधारणके लिए सुलभ हो जाय ।

अभीतक इस मालामें १८ ग्रन्थ निकल चुके हैं । यदि धर्मात्मा भाइयोंसे बराबर सहायता मिलती रही तो इसके द्वारा सैकड़ों अपूर्व ग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा ।

इसके ग्रन्थोंको खरीदकर पढना, मन्दिरोंमे स्थापित करना और असमर्थ विद्वानोंको बाँटना, यह प्रत्येक जैनीका कर्तव्य होना चाहिए ।

व्याह शादी, उत्सव, प्रतिष्ठा मेला आदि प्रत्येक मौके पर इस ग्रन्थमालाको सहायता देनी और दिलानी चाहिए ।

जो धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी कमसे कम २०० प्रतियाँ खरीद लेते हैं, उनका चित्र और स्मरणपत्र उस ग्रन्थकी तमाम प्रतियोंमें छपवा दिया जाता है ।

सौ रुपयेसे अधिक इकमुश्त सहायता करनेवालोंको मालाके सब ग्रन्थ भेटमें दिये जाते हैं ।

–मंत्री ।

माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची।

क्र०	पुस्तक	मूल्य
१	लघीयस्त्रयादिसंग्रह (लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्ति, लघुसर्वज्ञसिद्धि, बृहत्सर्वज्ञसिद्धि)	।=)
२	सागारधर्मामृत सटीक	।≡)
३	विक्रान्तकौरवीय नाटक	।=)
४	पार्श्वनाथचरित्र	॥)
५	मैथिलीकल्याण नाटक	।)
६	आराधनासार सटीक	।)॥
७	जिनदत्तचरित ...	।)॥
८	प्रद्युम्नचरित	॥)
९	चारित्रसार	।=)
१०	प्रमाणनिर्णय ...	।–)
११	आचारसार ...	।=)
१२	त्रैलोक्यसार सटीक	१॥।)
१३	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह (तत्त्वानुशासन, इष्टोपदेश सटीक, नीतिसार, श्रुतावतार, श्रुतस्कन्ध, वैराग्य-मणिमाला, ढाढसीगाथा, तत्त्वसार, ज्ञानसार, मोक्षपंचाशिका, अध्यात्मतरंगिणी, पात्रकेसरी-स्तोत्र, अध्यात्माष्टक, द्वात्रिंशतिका)	॥=)
१४	अनगारधर्मामृत सटीक	३॥)
१५	युक्त्यानुशासन सटीक	॥–)
१६	नयचक्रसंग्रह (आलापपद्धति, नयचक्र द्रव्य—स्वभावप्रकाशक नयचक्र)	॥≡)
१७	षट्प्राभृतादि संग्रह	३)
१८	प्रायश्चित्त–संग्रह	

ग्रन्थ-सूची।

आद्यग्रन्थत्रयाणां प्रकरणसूची ।

नमो वीतरागाय ।

प्रायश्चित्तसंग्रहः ।

श्रीन्द्रनन्दियोगीन्द्र-विरचितं

छेदपिण्डम् ।

—∞—

विच्छिण्णकम्मबंधे णिच्छयणयमस्सिऊण अरहंते ।
वोच्छामि छेदपिंड पायच्छित्तं पणमिऊणं ॥ १ ॥

विच्छिन्नकर्मबधान् निश्चयनयमाश्रित्य अर्हत ।
वक्ष्यामि च्छेदपिण्ड प्रायश्चित्त प्रणम्य ॥

रिसिसावयमूलुत्तरगुणादिचारे पमाददप्पेहिं ।
जादे पायच्छित्तं णिसुणह कमसो जहाजोग्गं ॥ २ ॥

ऋषिश्रावकमूलोत्तरगुणातिचारे प्रमाददर्पाभ्याम् ।
जाते प्रायश्चित्त निशृणुत क्रमशो यथायोग्यम् ॥

पायच्छित्तं छेदो मलहरणं पावणासणं सोही ।
पुण्ण पवित्तं पावणमिदि पायच्छित्तनामाइं ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्तं छेदो मलहरणं पापनाशन शुद्धि. ।
पुण्य पवित्रं पावनमिति प्रायश्चित्तनामानि ॥

मूलगुणं संठाण गुरुमासं तह य पंचकल्लाणं ।
मासियमिदि पज्जाया णायव्वा पंचकल्लाणा ॥ ४ ॥

मूलगुण सस्थान गुरुमास तथा च पञ्चकल्याण ।
मासिकमिति पर्याया ज्ञातव्या पञ्चकल्याणा' ॥

णिव्वियडी पुरिमंडलमायामं एयठाण खमणमिदि ।
कल्याणमेगमेदेहिं पंचहिं पंचकल्लाणं ॥ ५ ॥

निर्विकृति पुरिमण्डल आचाम्ल एकस्थान क्षमणमिति ।
कल्याणमेक एतै पञ्चभि पञ्चकल्याण ॥

उववासपच्चए वा आयंबिलपच्चए व गुरुमासा दे ।
णिव्वियडिपच्चए वा अवणीदे होदि लहुमासं ॥ ६ ॥

उपवासपञ्चके वा आचाम्लपञ्चके वा गुरुमासा ॥
निर्विकृतिपञ्चके वा अपनीते भवति लघुमास ॥

णाऊण पुरिससत्त चित्त वयसथिराथिरत्तं च ।
एकम्मि य कल्लाणे अवणीदे भिण्णमासा से ॥ ७ ॥

ज्ञात्वा पुरुषसत्त्व चित्त व्रतस्थिरास्थिरत्व च ।
एकस्मिन् च कल्याणे अपनीते भिन्नमासा. तस्य ॥

आयामं सतिभाग दो दो णिव्वियडि एयठाणाई ।
पुरिमडलेगभत्ता चउरो बारस विउस्सग्गे ॥ ८ ॥

आचाम्ल सत्रिभाग द्वे द्वे निर्विकृती एकस्थानानि ।
पुरिमण्डलैकभक्ता' चत्वार द्वादश व्युत्सर्गाः ॥

अट्ठसयणमोक्कारा उववासो वा हवंति उववासे ।
छट्ठे पुण ते तिउणा छट्ठं वा एगकल्लाणं ॥ ९ ॥

अष्टशतनमस्कारा उपवासो वा भवन्ति उपवासे ।
षष्ठे पुनस्ते त्रिगुणाः षष्ठ वा एककल्याण ॥

णवपंचणमोक्कारा काउस्सग्गम्मि होंति एगम्मि ।
एदेहिं बारसेहिं उववासो जायदे एक्को ॥ १० ॥

नवपंचनमस्काराः कायोत्सर्गे भवन्ति एकस्मिन् ।
एतैर्द्वादशभिः उपवासो जायते एकः ॥

आयंबिलम्हि पादूण खमणपुरिमंडले तहा पादो ।
एयट्ठाणे अद्धं णिव्वियडीओ य एमेव ॥ ११ ॥

आचाम्ले पादोन क्षमणपुरिमण्डले तथा पादः ।
एकस्थाने अर्ध निर्विकृतौ च एवमेव ॥

मज्जारपदप्पमाणं पुढविं सलिलं च चुलुयपरिमाणं ।
दीवसिहामित्तग्गिं करपल्लवजणियय वाउं ॥ १२ ॥

मार्जारपदप्रमाण पृथिवीं सलिल च चुलुकपरिमाण ।
दीपशिखामात्राग्निं करपल्लवजनित वायुम् ॥

मुट्ठिपमाणं हरिदावयवं जो घायए पमादेण ।
पायच्छित्तं तस्स दु एक्केक्को तणुविउस्सग्गो ॥ १३ ॥

मुष्टिप्रमाण हरितावयव यः घातयेत् प्रमादेन ।
प्रायश्चित्तं तस्य तु एकैकः तनुव्युत्सर्गः ॥

---

१ इदं गाथासूत्रं ख पुस्तके नास्ति । छेदशास्त्रेऽपीदमुपलभ्यते ।

पंइंदियादिचउरिंदियंतजीवे जदा पमादेण ।
वप्पेणुवघादे जो को[1] वि मुणी थूलगुणधारी ॥ १४ ॥

एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रियान्तजीवान् यदा प्रमादेन ।
दर्पेण उपघातयेत् यः कोऽपि मुनिः स्थूलगुणधारी ॥

काउस्सग्गुववासा दायव्वा तस्स पाणगणणाए ।
उत्तरगुणियस्स पुणो इंदियगणणाए दायव्वा ॥ १५ ॥

कायोत्सर्गोपवासा दातव्या तस्मै प्राणगणनया ।
उत्तरगुणिने पुनः इन्द्रियगणनया दातव्याः ॥

अहवा पयत्तअपयत्तचारिणो तह थिरस्स अथिरस्स ।
काओसग्गुववासा इंदियगणणाए पाणगणणाए ॥ १६ ॥

अथवा प्रयत्नापयत्नचारिणोः तथा स्थिरस्यास्थिरस्य ।
कायोत्सर्गोपवासा इन्द्रियगणनया प्राणगणनया ॥

बारसछच्चदुतिण्हं इगिवितिचउरिंदियाण मोद्दवणे ।
णियमजुदो उववासो तप्पडिबद्धो तवो अहवा ॥ १७ ॥

द्वादशषट्चतुस्त्रयाणां एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां मर्दने ।
नियमयुत उपवासः तत्प्रतिबद्धं तपोऽथवा ॥

तिछणवबारसगुणिदाणेयाण घायणे सनियमाइं ।
इगिवितिचदुछट्ठाइ तप्पडिबद्धो तवो अहवा ॥ १८ ॥

त्रिषट्नवद्वादशगुणितानामेकेन्द्रियादीनां घातने सनियमानि ।
एकद्वित्रिचतुःषष्ठानि तत्प्रतिबद्धं तपोऽथवा ॥

१ कोइ ख पुस्तके । २ मूलगुणधारी ख. पुस्तके ।

पण्णारसगुणिदाणं पुण एयाणं घायणे हवे छेदो ।
सप्पडिक्कमणं कल्लाणपंचयं तत्तवो अहवा ॥ १९ ॥

पञ्चदशगुणितानां पुनः एकेन्द्रियादीनां घातने भवेच्छेदः ।
सप्रतिक्रमणं कल्याणपञ्चकं तत्तपोऽथवा ॥

एदं पायच्छित्तं अयत्तचारिस्स होइ दायव्वं ।
जत्तेण चरंतस्स खु एदस्सद्धं भणंति परे ॥ २० ॥

एतत्प्रायश्चित्तं अयत्नचारिणः भवति दातव्यं ।
यत्नेन चरतः खलु एतस्य अर्धं भणन्ति परे ॥

मूलुत्तरगुणधारी पमादसहिदो पमादरहिदो य ।
एक्केक्को वि थिराथिरभेदेणं होइ दुवियप्पो ॥ २१ ॥

मूलोत्तरगुणधारी प्रमादसहितः प्रमादरहितश्च ।
एकैकोऽपि स्थिरास्थिरभेदेन भवति द्विविकल्पः ॥

तेसिं असण्णिघादे उववासा तिण्णि छट्ठमथ छट्ठं ।
मासिय पणगं ति य तियखमणं छट्ट लघुमासमिगिवारे ॥ २२ ॥

तेषां असञ्ज्ञिघाते उपवासाः त्रयः षष्ठं अथ षष्ठं ।
मासिकं पञ्चकं इति च त्रिकक्षमणं षष्ठं लघुमासः एकवारे ॥

छट्ठ लहुमास मासिय मूलट्ठाणोववासतिग छट्ठं ।
तह भिण्णमास मासियमिदि कमसो होदि बहुवारे ॥ २३ ॥

षष्ठं लघुमासः मासिकं मूलस्थानं उपवासत्रिकं षष्ठं ।
तथा भिन्नमासः मासिकमिति क्रमशो भवति बहुवारे ॥

---

१ पण्णरसगुणाण ख. पुस्तके । २ पमादरहिदो पमादसहिदो य. ख. ।

संतरमेदं देयं सण्णिवधे पुण णिरंतरं देयं ।
चदुवारेहि य परदो सव्वत्थ वि होदि मूलखिदी ॥ २४ ॥

सान्तरमेतद् देय सञ्ज्ञिवधे पुनः निरन्तर देयं ।
चतुर्वारेभ्य च परत. सर्वत्रापि भवति मूलक्षितिः ॥

बालित्थीगोघादे णियदंसणभयवसा समावण्णे ।
तिण्णि य मासा छट्ठ तस्स य अद्धं तदद्धं च ॥ २५ ॥

बालस्त्रीगोघाते निजदर्शनभयवशात्समापन्ने ।
त्रयश्च मासा षष्ठ तस्य च अर्ध तदर्धं च ॥

विरदो व सावओ वा तिविहो जदि संजदस्स उवरिं दु ।
उवयरणादिनिमित्त अप्पाण घादए को वि ॥ २६ ॥

विरतो वा श्रावको वा त्रिविध[1] यदि संयतस्योपरि तु ।
उपकरणादिनिमित्त आत्मान घातयेत् कोऽपि ॥

ताण वधे संजादे बारसमासा तहेव छम्मासा ।
तिण्णि य मासा छट्ठ दिवड्ढमासो य दायव्वं[2] ॥ २७ ॥

तेषा वधे सजाते द्वादशमासा तथैव षण्मासा ।
त्रयश्च मासा षष्ठ द्व्यर्धमासश्च दातव्य ॥

सेवडयभगववंदगकावालियभोयपमुहपासंडा ।
जदि सजदस्स कस्स वि उवरि विवादादिहेदूहिं ॥ २८ ॥

श्वेतपटकभगवद्वन्दककापालिकभोजप्रमुखपाषंडाः ।
यदि सयतस्य कस्यापि उपरि विवादादिहेतुभिः ॥

---

१ उत्तममध्यमभेदेन त्रिविध श्रावक । २ दायव्वा ख. ।

अप्पाणं विणिवायंति तस्स छट्टं तु होइ छम्मासं ।
तद्दिक्खियाण तब्भत्ताण वहे पुणु तदद्धद्धं ॥ २९ ॥

आत्मानं विनिपातयन्ति तस्य षष्ठं तु भवति षण्मासं ।
तद्दीक्षितानां तद्भक्तानां वधे पुनः तदर्धार्धं ॥

बंभणघादे अट्ठ य मासा एयंतरेण उववासा ।
खत्तियवइस्ससुद्दाण घायणाओ उण तदद्धद्धं ॥ ३० ॥

ब्राम्हणघाते अष्टौ च मासा एकान्तरेण उपवासाः ।
क्षत्रियवैश्यशूद्राणां घातनतः पुनः तदर्धार्धं ॥

अट्ठ य छच्चदु दोण्णि य मासा एयंतरेत्ति बिंति परे ।
दोसु वि उवएसेसु छट्टं आदिए अंते ॥ ३१ ॥

अष्टौ च षट् चत्वारः द्वौ च मासा एकान्तरे इति ब्रुवन्ति परे ।
द्वयोरपि उपदेशयोः षष्ठ आदिके अन्ते ॥

णियसमयजादिकुलधम्मसुक्कस्सायरणधारयाण वहे ।
एसा सुद्धी मज्झिमजहण्णघादे तदद्धद्धा ॥ ३२ ॥

निजसमयजातिकुलधर्मे उत्कृष्टाचरणधारकाणां वधे ।
एषा शुद्धिः मध्यमजघन्यघाते तदर्धार्धा ॥

मेसाससमहिसखरकरहाजादीगामचउप्पयवहम्मि ।
अंतादिछट्टसहिया मासद्धेयंतरुववासा ॥ ३३ ॥

मेषाश्वमहिषखरकरभाऽजादिग्रामचतुष्पदवधे ।
अन्तादिषष्ठसहिताः मासार्धाः एकान्तरेणोपवासाः ॥

---

१ तदद्ध क. । २ घायणे. ख. । ३ तदद्ध. क. । ४ आदीय अंते च ख. ।
५ मेषादिग्रामवासिनां चतुष्पदानां वधे ।

तणचारीमंसासीविहगोरगपरिसप्पजलयरवहेहिं ।
चउदस तेरस बारस एयारस दस णव उववासा ॥ ३४ ॥

तृणचारिमांसाशिविहगोरगपरिसर्पजलचरवधे
चतुर्दश त्रयोदश द्वादश एकादश दश नव उपवासाः ॥

बालादिघादिपायच्छित्तं एदं पमादजदस्स ।
दोसस्सेदं दप्पुब्भवस्स पुण होइ तव्विउणं ॥ ३५ ॥

बाल्यादिघातिप्रायश्चित्त एतत् प्रमादजातस्य ।
दोषस्य इद दर्पोद्भवस्य पुन भवति तद्द्विगुण ॥

अण्णे भणंति एदं पायच्छित्तं सदप्पदोसस्स ।
वुत्त पमादजादस्स होइ एयस्स अद्धमिदि ॥ ३६ ॥

अन्ये भणति एतत्प्रायश्चित्त सदर्पदोषस्य ।
उक्त प्रमादजातस्य भवति एतस्य अर्धमिति ॥

अट्ठ य सत्त य छच्चदु उववासा होंति अइमहिल्लाणं ।
चउरिंदियतेइंदियवेइंदियएइंदियाण वहे ॥ ३७ ॥

अष्टौ च सप्त च षट् चत्वार उपवासा भवन्ति अतिमहता ।
चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियैकेन्द्रियाणा वधे ॥

कोमलहरियतिणंकुरपुंजस्सुवरिं पमाददोसेण ।
पाए पडियम्मि हवे उववासो सप्पडिक्कमणो ॥ ३८ ॥

कोमलहरिततृणाङ्कुरपुजस्योपरि प्रमाददोषेण ।
पादे पतिते भवेत् उपवासः सप्रतिक्रमण ॥

---

१ तद्दुगुणं ख ।

एवं वितिचउरिंदियपुंजाणं उवरि पडियए पाए ।
सपडिक्कमणं दोण्णि य तिण्णि य चत्तारि उववासा ॥ ३९ ॥

एवं द्वित्रिचतुरिन्द्रियपुंजाना उपरि पतिते पादे ।
सप्रतिक्रमणं द्वौ च त्रयश्च चत्वार उपवासा. ॥

सप्पंडयाणमुवरिं पाए पडियम्मि अहव चंकमिए ।
कल्लाणियाणमुवरिं पडिकमणं पच उववासा ॥ ४० ॥

सर्पतामुपरि पादे पतिते अथवा चक्रमिते ।
कल्याणिकानामुपरि प्रतिक्रमणं पंच उपवासाः ॥

पढमवदं–इति प्रथमव्रतं ।

गणिणा चत्तणिहेण व सेसेहिं असण्णिएण केण वि वा ।
अप्पम्मि मुसावादे अदिण्णगहणे य अप्पम्मि ॥ ४१ ॥

गणिना त्यक्तनिवहेन वा स्नेहेन असन्निहतेन केनापि वा ।
आत्मनि मृषावादे अदत्तग्रहणे च आत्मनि ॥

विण्णादे अणुकमसो छेदो आलोयणा विउस्सग्गो ।
सप्पडिक्कमणो एगो उववासो दोण्णि उववासा ॥ ४२ ॥

विज्ञातेऽनुक्रमशः छेद· आलोचना व्युत्सर्गः ।
सप्रतिक्रमणः एक उपवास द्वौ उपवासौ ॥

अप्फालिऊण हत्थ पुरदो समयस्स लोयपुरदो वा ।
जदि वददि मुसावाद तो सट्ठाणं च मूलखिदी ॥ ४३ ॥

---

१ गहणम्मि अप्पम्मि । २ अस्या अग्रे इयमपि गाथा समुपलभ्यते ख पुस्तके

दम्मसुवण्णादीय गहिदं जदि मुणदि ससमओ ।
अहवा एय परियत्त लोगो सट्ठाण च मूलखिदी ॥ १ ॥
द्रमसुवर्णादिक गृहीतं यदि जानाति स्वसमय ।
अथवा इत परो लोक संस्थानं च मूलक्षितिः ॥

आस्फाल्य हस्तं पुरतः समयस्य लोकपुरतो वा ।
यदि वदति मृषावादं तत संस्थानं च मूलक्षिति[1] ॥

अहवा समक्खअसमक्खउभयतिकरणमोसभासिस्स ।
काउस्सग्गो इगिदुतिउववासा सप्पडिक्कमणा ॥ ४४ ॥

अथवा समक्षासमक्षोभयत्रिकरणमृषाभाषिण. ।
कायोत्सर्ग एकद्वित्र्युपवासा[1] सप्रतिक्रमणाः ॥

सुण्णे पच्चक्खे अण्णादे णादे अदत्तगहणम्मि ।
काउस्सग्गो इगिदुत्तिउववासा सप्पडिक्कमणा ॥ ४५ ॥

शून्ये प्रत्यक्षे अज्ञाते ज्ञाने अदत्तग्रहणे ।
कायोत्सर्ग एकद्वित्र्युपवासा सप्रतिक्रमणा. ॥

एदं पायच्छित्तं पमाददो एगवारदोसस्स ।
दप्पेण य बहुवार कयस्स पुण पचकल्लाण ॥ ४६ ॥

एतत्प्रायश्चित्त प्रमादत एकवारदोषस्य ।
दर्पेण च बहुवार कृतस्य पुन पचकल्याण ॥

विदिय तदिय वद–इति द्वितीय तृतीय व्रत ।

अब्बंभभासिणित्थीअहिलासतदंगफासणि[3] च्छेदो ।
आलोयणा य काउस्सग्गो णियमोववासा य ॥ ४७ ॥

अब्रह्मभाषिण स्त्र्यभिलाषतदङ्गस्पर्शने छेद. ।
आलोचना च कायोत्सर्ग[4] नियमोपवासश्च ॥

---

१ सो क । २ ण क । ३ फासणे ख । ४ सप्रतिक्रमणोपवासश्च ।

दट्ठूण चिंतिवूण य महिलं जस्स पमाददोसेण ।
इंदियखलणं जायदि तस्स तिरत्तं हवइ छेदो ॥ ४८ ॥

दृष्ट्वा चिन्तयित्वा च महिला यस्य प्रमाददोषेण ।
इन्द्रियस्खलनं जायते तस्य त्रिरात्रं भवति छेद· ॥

जंतारूढो जोणिं अपुसंतो जदि णियत्त दिविरत्तो ।
सपडिक्कमणुववासो दायव्वो तस्सिमो च्छेदो ॥ ४९ ॥

यत्रारूढो योनिं अस्पृश्यन् यदि निवृत्तदिविरक्त ।
सप्रतिक्रमणभुपवासो दातव्य तस्याय छेद· ॥

जो अव्बंभं सेवदि विरदो सत्तो सई अविण्णाद ।
सपडिक्कमणं कल्लाणपंचयं तस्स दायव्वं ॥ ५० ॥

य अब्रम्ह सेवते विरत सक्त. सकृत् अविज्ञात ।
सप्रतिक्रमण कल्याणपचक तस्य दातव्य ॥

बहुसो वि मेहुणं जो सेवदि अण्णेहिं अमुणिइ तस्स ।
एयतरोववासा चउमासा अहव छम्मासा ॥ ५१ ॥

बहुशोऽपि मैथुन य सेवते अन्यै अज्ञात तस्य ।
एकान्तरोपवासा· चतुर्मासा अथवा षण्मासा· ॥

जो सेवदि अव्बंभं परेहिं विण्णादमेकवारम्मि ।
पायच्छित्तं तस्स दु दायव्वं मूलभूमित्ति ॥ ५२ ॥

य· सेवते अब्रम्ह परैः विज्ञात एकवारे ।
प्रायश्चित्त तस्य तु दातव्य मूलभूमिरिति ॥

---

१ खरणं ख. । २ तस्स तिरत्तं पडिक्कमणं ख ।

जो देवमणुयतिरियउवसग्गजावं सुभुंजदि अबंभं ।
सपडिक्कमणं कल्लाणपंचयं होदि देयं से ॥ ५३ ॥

य. देवमनुष्यतिर्यगुपसर्गजातं सुभजते अब्रम्ह ।
सप्रतिक्रमण कल्याणपचक भवति देय तस्य ॥

एक्केक्कदिणुग्घाडं कल्लाणं कुणदि देवअबंभे ।
तिरिए दोदोदिवसुग्घाडं मणुए अणुग्घाडं ॥ ५४ ॥

एकैकदिनोद्धाट कल्याण करोति देवे अब्रम्हणि ।
तिरश्चि द्विद्विदिवसोद्धाट मनुजे अनुद्धाट ॥

जो णियमवंदणाणं मज्झे एक्कं च दो च किरियाओ ।
सज्झायजुदा तिण्णि व काऊण परिस्समादीहि ॥ ५५ ॥

यः नियमवन्दनयोर्मध्ये एका च द्वे च क्रिये ।
स्वाध्याययुतास्तिस्रो वा कृत्वा परिश्रमादिभि ॥

सुत्तो पदोससमए रेदं पस्सदि खु तस्सिमो च्छेदो ।
सपडिक्कमण खमण णियमं खमणं च णियमो य ॥ ५६ ॥

सुप्त प्रदोषसमये रेत पश्यति खलु तस्याय छेद ।
सप्रतिक्रमण क्षमण नियम. क्षमण च नियमश्च ॥

रयणिविरामे सज्झायणियमवंदणाण मज्झम्हि ।
एक्कं च दो व तिण्णि य किरियाउ समाणिउ य पसुत्तो ॥ ५७ ॥

रजनिविरामे स्वाध्यायनियमवन्दनाना मध्ये ।
एका च द्वे वा तिस्रश्च क्रिया समाप्य च प्रसुप्त ॥

---

१ भजदि. ख पुस्तके । २ सान्तरं । ३ निरन्तरम् । ४ सज्झायणियमजिणवदणाण ख. पुस्तके पाठ ।

एदं पस्सदि जदि तो दायव्वं तस्स सणियमं खवणं ।
सपडिक्कमणं खमणं सपडिक्कमणं तहा छट्टं ॥ ५८ ॥

एतः पश्यति यदि ततः दातव्यं तस्य सनियमं क्षमणं ।
सप्रतिक्रमण क्षमण सप्रतिक्रमणं तथा षष्ठं ॥

सपडिक्कमणुववासुद्दिवसे खवणाइं वेण्णि वेंति परे ।
रयणीए पुव्वपच्छिमजामे णियमोवजुत्ताइ ॥ ५९ ॥

सप्रतिक्रमणोपवासः दिवसे क्षमणे द्वे ब्रुवन्ति परे ।
रजन्या· पूर्वपश्चिमयामे नियमोपयुक्ते ॥

अवसेसणिसासमए सुज्झदि णियमेण दिट्ठए एदे ।
दिवसम्मि सुत्तओ जदि पस्सदि तो छट्ठ पडिकमण ॥ ६० ॥

अवशेषनिशासमये शुद्ध्यति नियमेन दृष्टे एतसि ।
दिवसे सुप्त यदि पश्यति तत· षष्ठ प्रतिक्रमण ॥

चउत्थ वदं—इति चतुर्थ व्रत ।

एगवराडयकागिणिपणचेलाइं[2] पमाददोसेण ।
अप्पं परिग्गहं जो गेण्हदि णिग्गंथवदधारी ॥ ६१ ॥

एकवराटककाकिणीपणचेलानि प्रमाददोषेण ।
अल्प परिग्रह य. गृह्णाति निर्ग्रन्थव्रतधारी ॥

आलोयणा य काउस्सग्गो खमणं च णियमसंजुत्तं ।
सपडिक्कमणुववासो कमसो छेदो इमो तस्स ॥ ६२ ॥

---

१ विंशतिवराटकाना एकाकाकिणी चतु काकिणीनां एक पण । २ दी ख.

आलोचना च कायोत्सर्गः क्षमण च नियमसंयुक्तं ।
सप्रतिक्रमणोपवासः क्रमशः छेदोऽयं तस्य ॥

अच्छादणं महग्घ जो गेण्हदि संजदो सरागमणो ।
तस्स दु पायच्छित्तं वे उववासा पडिक्कमण ॥ ६३ ॥

आच्छादन महार्घ्यं य गृह्णाति सयत सरागमनाः ।
तस्य तु प्रायश्चित्त द्वौ उपवासौ प्रतिक्रमण ॥

पोथियलिहावणत्थ जइ देइ धणं सहस्सगणणाए ।
कोइ वि कस्स वि तो पोथिय लिहाविऊण सो पच्छा ॥६४॥

पुस्तकलेखनार्थं यदि ददाति धन सहस्रगणनाया ।
कोऽपि कस्यापि ततः पुस्तक लेखयित्वा स पश्चात् ॥

कुणउ मुणी कल्लाणाइ पंच पडिकमणसुणणपुव्वाइं ।
ऊणम्मि व णाऊणा सोही बहुगम्मि मूलखिदी ॥६५॥

करोतु मुनि कल्याणानि पन्च प्रतिक्रमण····पूर्वाणि ।
ऊने च ज्ञात्वा शुद्धि, बहुके मूलक्षिति ॥

जो अण्णसि दव्व ठवइ ठविऊण कुणइ अइलोहं ।
सठवणाण य काल दीणत्तं दावए नियम ॥ ६६ ॥

य अन्येषा द्रव्य स्थापयति स्थापयित्वा करोति अतिलोभं ।
स्थापनाना च काले दीनत्व दापयेत् नियम ॥

विक्खादत्ताणगहण करेदि गिण्हदि परिग्गहं सइरं ।
तस्स य पायच्छित्तं दायव्वमणुक्कमेणेदं ॥ ६७ ॥

१ ऊणम्मि घणेऊणा ख पुस्तके पाठ । २ तद्ध्वगणयणकाले. ख पाठ तत्स्थपननयनकाले । ३ गिण्हदि ख ।

विख्यातदानग्रहण करोति गृह्णाति परिग्रह स्वैर ।
तस्य च प्रायश्चित्तं दातव्यमनुक्रमेणेदम् ॥

पणुववासो छट्ठं अट्ठमयं मासियं च एयाइं ।
पडिकमणमपुव्वाइं चरिमे पुण मूलभूमित्ति ॥ ६८ ॥

एकोपवास. षष्ठ अष्टमकं मासिक च एतानि ।
प्रतिक्रमणपूर्वाणि चरमे पुन· मुलभूमिरिति ॥

पंचम वदं–इति पंचम व्रतम् ।

चउविहमेयविह वा आहारं संजदो जदि णिसाए ।
उववासपरिस्सतो वाहिगिलाणो बभुंजिज्ज ॥ ६९ ॥

चतुर्विधमेकविध वा आहार सयतो यदि निशि ।
उपवासपरिश्रमत व्याधिग्लानो बोभुज्यते ॥

तो पडिकमणपुरोगं छट्ठं खमण च तस्स दायव्व ।
उवसग्गेणं सव्वं रत्तिं भुजतस्स संठाण ॥ ७० ॥

तत. प्रतिक्रमणपुरोग षष्ठ क्षमण च तस्य दातव्य ।
उपसर्गेण सर्व रात्रौ भुजानस्य सस्थानम् ॥

संतो रोयक्कंतो सहोवसग्गो ठिओ णिसण्णो वा ।
णिसि भोयणम्मि पावइ मासियमेवेत्ति वेंति परे ॥ ७१ ॥

सन् रोगाक्रान्त सोपसर्ग. स्थित. निषण्णो वा ।
निशि भोजने प्राप्नोति मासिकमेवेति ब्रुवन्ति परे ॥

जो रत्तीए चरियं पविसिय धम्मस्स कुणइ उड्डाहं ।
दायव्वं से मूलठाणमसभोगिगो सो य ॥ ७२ ॥

यः रात्रौ चर्यां प्रविश्य धर्मस्य करोति उद्दाह ।
दातव्यं तस्य मूलस्थानमसभोगिकः स च ॥

सूरम्मि उग्गमंते अहव छण्णम्मि लोहिदे सेदे ।
रविबिंबे भुंजतस्स होदि लहुमास पणयदुगं ॥ ७३ ॥

सूर्ये उद्गमे अथवा छन्ने लोहिते श्वेते ।
रविबिम्बे भुजानस्य भवति लघुमास. पचकद्विकम ॥

नालीतिगस्स मज्झे जदि भुंजदि संजदो अणाचिण्ण ।
पुव्वह्ले अवरह्ले व तस्स पणगं हवे छेदो ॥ ७४ ॥

नालीत्रिकस्य मध्ये यदि भुनक्ति सयत अनाचीर्ण. ।
पूर्वाह्ले अपराह्ले वा तस्य पचक भवेत् छेद ॥

रादो दिया व सुविणतरम्मि महुमज्जमंससेविस्स ।
णियमुववासो णियमो केवलो सिविणभोजिस्स ॥ ७५ ॥

रात्रौ दिवि वा स्वप्नान्तरे मधुमद्यमाससेविन ।
नियमोपवासो नियम केवल स्वप्नभोजिन ॥

छट्ठं वदं—इति षष्ठ व्रतम ।

सुद्धेण असुद्धेण य उप्पंथेणं गयस्स वायामे ।
काउस्सग्गो खमण दायव्वमपुण्णकोसम्मि ॥ ७६ ॥

शुद्धेनाशुद्धेन च उत्पथेन गतस्य व्यायामेन ।
कायोत्सर्ग. क्षमण दातव्य अपूर्णकोशे ॥

घणहिमसमये गिंभे दिवसणिसा पासुगिदरपंथेण ।
तिगतिगतिगातिगछच्चउचउचउनवछणवछक्कोसे ॥ ७७ ॥

घनहिमसमये ग्रीष्मे दिवसनिशयोः प्रासुकेतरपथेन ।
त्रिकात्रिकत्रिकात्रिकषट्चतुःचतुःचतुःनवषट्नवषट्के शे ॥

खमणं छट्ठट्ठम दसम खवणं खमणं च छट्ट अट्टमयं ।
खमणं खमणं खमणं छट्ठं च गदेस्सिमो छेदो ॥ ७८ ॥

क्षमण षष्ठ अष्टमं दशमं क्षमण क्षमणं च षष्ठं अष्टमक ।
क्षमणं क्षमण क्षमणं षष्ठ च गतेऽस्यायं छेदः ॥

बेंति परे तिदुतिदुछच्चउछच्चउणवछक्कणवछक्ककोसाणं ।
इगिइगितिचदुरिगिगिगिदुतिण्णिगिइगिगिदोण्णि खमणाणि॥७९॥

ब्रुवन्ति परे त्रिद्वित्रिद्विषट्चतुःषट्चतुःनवषट्कनवषट्ककोशाना ।
एकैकत्रिचतुरेकैकद्वित्र्येकैकैकद्विकानि क्षमणानि ॥

पिच्छं मोत्तूण मुणी गच्छदि जदि सत्तपंडुपरिमाणं ।
सुज्झदि काओसग्गेण गाउगदे एयखमणेण ॥ ८० ॥

पिच्छ मुक्त्वा मुनि. गच्छति यदि सप्तपादपरिमाण ।
शुद्ध्यति कायोत्सर्गेण गव्युतिगते एकक्षमणेन ॥

डोलियगमणम्मि पुणो पुव्वुत्तत्तिकालपथमलहरणं ।
वहमाणपुरिससंखागुणिदं देयं गिलाणस्स ॥ ८१ ॥

दोलिकागमने पुन· पूर्वोक्तत्रिकालपथमलहरण ।
वहमानपुरुषसंख्यागुणित देय ग्लानस्य ॥

जाणुपमाणम्मि जले अजंतुबहुलम्मि सोलसधणुत्ति ।
इरियंतस्स विसोही मुणिणो एगो विउस्सग्गो ॥ ८२ ॥

---

१ सत्तपायपरिमाणं ख । २ जो डोलियगमणम्मि ख । ३ जो जाणुपमाणम्मि ख ।

जानुप्रमाणे जलेऽजन्तुबहुले षोडशधनूंषीति ।
ईराणस्य विशुद्धिः मुनेः एको व्युत्सर्गः ॥

जण्हू उवरिं चउचउरंगुलेसु एगादिदुगुणदुगुणाइं ।
खमणाइं जंतुपउरे पुण अब्भहियाइं देयाइं ॥ ८३ ॥

जानूपरि चतुश्चतुरङ्गुलेषु एकादिद्विगुणद्विगुणानि ।
क्षमणानि जन्तुप्रचुरे पुनः अभ्यधिकानि देयानि ॥

काउस्सग्गो आलोयणा य णावादिणा णदीतरणे ।
णावाए जलहितरणे सोही खवणादिपणयंता ॥ ८४ ॥

कायोत्सर्ग आलोचना च नावादिना नदीतरणे ।
नावा जलधितरणे शुद्धिः क्षमणादिपंचकान्ता ॥

सपरणिमित्तपउंजिददोणीणावादिणा णदीतरणे ।
अण्णे भणंति एगो उववासो तह विउस्सग्गो ॥ ८५ ॥

स्वपरनिमित्तप्रयुक्तद्रोणीनावादिना नदीतरणे ।
अन्ये भणन्ति एक उपवासस्तथा व्युत्सर्गः ॥

वुड्डुतएसु णावादिगेसु बाहाहि जो तरेऊण ।
णीसरदि तस्स छेदो खमणादिपणगपरियंतो ॥ ८६ ॥

ब्रुडत्सु नावादिकेषु बाहुभ्यां य तीर्त्वा ।
निःसरति तस्य च्छेदः क्षमणादिपञ्चकपर्यन्तः ॥

इरियासमिदि–इतीर्यासमितिः ।

दोण्हं मासंताणं मासंतरसंतरे विउस्सग्गो ।
आलोयणा दु छक्कम्मदेसणे खमणमेगं तु ॥ ८७ ॥

द्वयोः भाषमाणयोः भाषमाणस्यान्तरे व्युत्सर्गः ।
आलोचना तु षट्कर्मदेशने क्षमणमेकं तु ॥

उलूखलिकुट्टणं घरसारवणं घरकुड्डिलिंपणं चेव ।
अंगणवोहारणपाणिआहणणं छेणवालणमिदि छकम्मं ॥ ८८ ॥

उरवलीकण्डनं गृहसम्मार्जनं गृहकुडिलिंपन चैव ।
अगणवोहारण पानीयानन कारीषज्वालनमिति षट्कर्म ॥

अविरदसुत्तपबोधिस्स गीदणट्टादिकरणभासिस्स ।
पुव्वुच्छिण्णपराधपभासिस्स य अट्टमं देयं ॥ ८९ ॥

अविरतसुप्तप्रबोधिनः गीतनृत्यादिकरणभाषिण. ।
पूर्वच्छिन्नापराधभाषिणश्च अष्टम देयं ॥

चाउव्वण्णपराधं जो भासदि सो अवंदणिज्जो खु ।
गाणं गणिकं कीरदि छेदो पणगादिमासिगंतो से ॥ ९० ॥

चातुर्वर्ण्यापराध यः भाषते सोऽवन्दनीयः खलु ।
गान गणिक. कीर्तयति छेद पचकादिमासिकान्तस्तस्य ॥

भासासमिदि—इति भाषासमिति ।

अण्णाणवाहिदप्पेहिं हरिदकंदादिगेसु खद्धेसु ।
सालोयण विउसग्गो खमणं पणगं च इगिवारे ॥ ९१ ॥

अज्ञानव्याधिदर्पै हरितकन्दादिकेषु खादितेषु ।
सालोचनो व्युत्सर्गः क्षमण पंचक च एकवारे ।

---

१ इदं गाथासूत्रं ख–पुस्तके नास्ति ।

बहुवारेसु य पणगं मूलगुणं तह य मूलभूमी य ।
दायव्वा अणुकमसो हरिदं खादेज्ज ण हु विरदो ॥ ९२ ॥

बहुवारेषु च पञ्चकं मूलगुणं तथा च मूलभूमिश्च ।
दातव्या अनुक्रमशः हरितं खादयेन्न हि विरतः ॥

विसमपयवमिदणिट्ठुवभासिवकुड्डावलंवणादीहिं ।
भुत्ते सेह गिलाणेणुववासो छट्ठमिदराणं ॥ ९३ ॥

विषमपदवमितनिष्ठ्यूतभाषितकुड्यावलम्बनादिभिः ।
भुक्ते सति म्लानेन उपवासः षष्ठं इतरेषां ॥

कागादिअतराए जादे वि परिस्समादिहेदूहिं ।
असमत्थो जदि भुंजदि तस्सुववासो हवदि छेदो ॥ ९४ ॥

काकाद्यन्तराये जातेऽपि परिश्रमादिहेतुभिः ।
असमर्थो यदि भुनक्ति तस्योपवासो भवति च्छेदः ॥

गहिदोग्गहम्मि विसरिऊणं पब्भुत्तम्मि होदि उववासो ।
भोयणकाले णादम्मि अंतरायं खु कादव्वं ॥ ९५ ॥

गृहीतावग्रहे विस्मृत्य प्रभुक्ते भवत्युपवासः ।
भोजनकाले ज्ञाते अन्तरायः खलु कर्तव्यः ॥

वडुंतरायगे संजादे भुत्ते सुदम्मि उववासो ।
सपडिक्कमणो दिट्ठम्मि अप्पणो छट्ठ पडिक्कमणं ॥ ९६ ॥

वृहदन्तरायके सजाते भुक्ते श्रुते उपवासः ।
सप्रतिक्रमणः दृष्टे स्वयं षष्ठं प्रतिक्रमणं ॥

१—९६ गाथातः ९७ गाथा ख—पुस्तके पूर्वं ।

चंडालसंकरे सइं मूलगुणेयं सरीरए पुट्टे ।
भुत्तस्स य तद्दुगुणं उववासुट्ठावणा छेदो ॥ ९७ ॥

चंडालसंकरे सति मूलगुणैकं शरीरके स्पृष्टे ।
भुक्तस्य च तद्द्विगुण उपवासस्थापनाः छेदः ॥

वलयगजदंतपिच्छदंडकरोरुहा अत्थु ।
हासस्स सिद्धवयादि पुव्वद्धं कइयं ॥ ९८ ॥

. ... ।
. . .. ॥

जदि पुण मुहम्मि पस्सदि सपडिक्कमणं तु अट्ठमं कुज्जा ।
गामाए गामंतरचरियाए खमण पडिकमणं ॥ ९९ ॥

यदि पुनः मुखे पश्यति सप्रतिक्रमण तु अष्टम कुर्यात् ।
ग्रामात् ग्रामान्तरचर्याया क्षमणं प्रतिक्रमणं ॥

आधाकम्मे भुत्ते गिलाणअगिलाणएण इगिवारे ।
खमणं छट्ठं बहुवारएसु संठाणमूलखिदी ॥ १०० ॥

आधाकर्माणि भुक्ते ग्लानाग्लानाभ्या एकवारे ।
क्षमण षष्ठं बहुवारेषु सस्थानमूलक्षिती ॥

एसणासमिदी–इत्येषणासमितिः ।

वियडितणकट्टचालण ठाणंतरसंकमे विउस्सग्गो ।
रत्तीए अंधयारे खमणं तच्चालणे गहणे ॥ १०१ ॥

---

१ इदं गाथासूत्रं ख–पुस्तके नास्ति । २ रत्तीए बहुअधयारे. ख–पाठः ॥

वियड्डितृणकाष्ठचालने स्थानान्तरसंक्रमे व्युत्सर्गः ॥
रात्र्याकन्धकारे क्षमणं तच्चालने ग्रहणे ॥

उप्पण्णं पि कसाए मिच्छाकारं तक्खणे कुज्जा ।
खवणं चाहोरत्तं गदे तेण परं मासियं छेदो ॥ १०२ ॥

उत्पन्नेऽपि कषाये मिथ्याकार तत्क्षणे कुर्यात् ।
क्षमणं च अहोरात्र गते तेन परं मसिकं छेद. ॥

आदावणणिक्खेवणं—इत्यादाननिक्षेपणासमिति· ।

हरिदतणंकुरबीजाणुच्चारादिसु कदेसु उवरिं तु ।
सालोयणविउसग्गो थोवे खमणं तु बहुवारे ॥ १०३ ॥

हरिततृणाङ्कुरबीजानामुच्चारादिषु कृतेषु उपरि तु ।
सालोचनव्युत्सर्गः स्तोके क्षमण तु बहुवारे ॥

पइट्ठावण—इति प्रतिष्ठापनासमिति ।

अप्पयवपयवचारिस्स परसरसघाणचक्खुसोदाणं ।
अदिचारे इगिवितिचउपंचउववासा विउस्सग्गा ॥ १०४ ॥

---

१ इद गाथासूत्र ख—पुस्ते नास्ति । २ अस्मादग्रे क—पुस्तके अधस्तनवर्ती श्लोकोऽपि विद्यते । ख—पुस्तके तु नास्ति । स च प्रायश्चित्तचूलिकाख्यस्य ग्रन्थस्य सप्ताशीतितम । तद्यथा ।

तृणकाष्ठकपाटानामुद्घाटनविघट्टने ।
चतुर्मास्याश्चतुर्थं स्यात् सोपस्थानमवस्थितं ॥

अप्रयत्नप्रयत्नचारिणोः स्पर्शरसघ्राणचक्षुःश्रोत्राणा

अतिचारे एकद्वित्रिचतुःपंचोपवासा व्युत्सर्गाः ॥

इंदियरोधं—इती न्द्रियरोधः ।

मासचउक्कं लोचो वरिसं च जुगं च जस्स वोलीणो ।

सपडिक्कमणं खमणं छट्ठं तह मासियं छेदो ॥ १०५ ॥

मासचतुष्कं लोचः वर्षं च युग च यस्य अतिक्रान्तः ।

सप्रतिक्रमण क्षमण षष्ठ तथा मासिकं छेदः ॥

अण्णे भणंति चाउम्मासियवरिसियजुगंतपडिक्कमणे ।

जादं पि जो ण लोचं देवावइ तस्सिमो छेदो ॥ १०६ ॥

अन्ये भणन्ति चतुर्मासिकवार्षिकयुगान्तप्रतिक्रमणे ।

जातमपि यो न लोच ददाति तस्याय छेद. ॥

सो पुण वाहिगिलाणो जदि णो लोचं करिज्ज उग्घाडं ।

एदं पायच्छित्तं करेज्ज इयरो अणुग्घाडं ॥ १०७ ॥

स पुन व्याधिग्लान. यदि नो लोच करोति उद्घाटं ।

एतत्प्रायश्चित्त कुर्यात् इतर अनुद्घाटम् ॥

लोचो वि जदि ण दिण्णो पडिकमणं णिसुणियं ण तद्दिवसे ।

तो खवणदुगं मासियमुग्घाडं तरं(ह) अणुग्घाडं ॥ १०८ ॥

लोचोऽपि यदि न दत्तः प्रतिक्रमण निश्रुतं न तद्दिवसे ।

तत. क्षमणद्विकं मासिकं उद्घाट तथा अनुद्घाटं ॥

लोचो—इति लोच ।

---

१ करोतीत्यर्थः । २ कृतः । ३ तहाणुग्घाडं ख ।

देवगुरुसमयकज्जेहिं जो ण अवखित्तमाणसो कुणइ ।
सज्झायचउक्कं नियममेक्कं मथ वंदणं एक्कं ॥ १०९ ॥

देवगुरुसमयकार्ये यः न अवक्षिप्तमानसः करोति ।
स्वाध्यायचतुष्कं नियममेकमथ वन्दना एकाम् ॥

पक्खिय अट्ठमियं वा किरिया जो चुक्कए खमणमेक्कं ।
तस्स च्छेदो तिण्णि विउसग्गा खलिदसज्झाए ॥ ११० ॥

पाक्षिका आष्टमिका वा क्रिया यः भ्रशाति क्षमणमेकं ।
तस्य च्छेदः त्रयो व्युत्सर्गाः स्वलितस्वाध्याये ॥

किरियावंदणणियमेसु विउस्सग्गूणएसु विहिएसु ।
अकयाए जोगभत्तीए तहा खवणद्धमिह सुद्धी ॥ १११ ॥

क्रियावंदनानियमेषु व्युत्सर्गोनकेषु विहितेषु ।
अकृताया योगभक्तौ तथा क्षमणार्द्धमिह शुद्धिः ॥

पक्खं पडि एक्केक्कं खमणं पडिकमणसुणणसंजुत्तं ।
कायव्वमेव तस्स य वदिक्कमे दोण्णि उववासा ॥ ११२ ॥

पक्ष प्रति एकैक क्षमण प्रतिक्रमणश्रवणसयुक्त ।
कर्तव्यमेव तस्य चातिक्रमे द्वौ उपवासौ ॥

अह पडिकमणं ण सुयं उववासो पुण कउ जदि हवेज्ज ।
तो तस्स पायछित्तं दायव्व एगखमणं तु ॥ ११३ ॥

अथ प्रतिक्रमणं न श्रुत उपवास. पुनः कृतो यदि भवेत् ।
तत तस्य प्रायश्चित्तं दातव्यं एकक्षमणं तु ॥

ण सुयाउ जेण पक्खियपडिकमणा तिण्णिआ देउ ।
एक्कखवणं पडिकमणपुव्वमं तीदपक्खगणणाए देयं से ॥ ११४ ॥

न श्रुता येन पाक्षिकप्रतिक्रमणा त्रयो दातव्याः ।
पक्षतपः प्रतिक्रमणपूर्वक अतीतपक्षगणनया देयं तस्य ॥

आसाढे संवच्छरपडिकमणे दिज्जसु बारस उववासा ।
सिद्वाकत्तियपुण्णिमपडिकमणे अट्ठ दायव्वा ॥ ११५ ॥

आषाढे संवत्सरप्रतिक्रमणे दीयन्ता द्वादश उपवासाः ।
सितकार्तिकपूर्णिमाप्रतिक्रमणायां अष्टौ दातव्याः ॥

फागुणचाउम्मासियपडिकमणे दिज्ज पोसधचउक्कं ।
कत्तियमासे चदुरो विंति परे फग्गुणे अट्ठ ॥ ११६ ॥

फाल्गुणचातुर्मासिकप्रतिक्रमणाया ददाति प्रोषधचतुष्कं ।
कार्तिकमासे चत्वारः ब्रुवन्ति परे फाल्गुणे अष्टौ ॥

णंदीसरपक्खट्ठिय पंचमिदिणपहुदिजामपरपक्खे ।
ठियतेरसोत्ति एदम्मि अंतरे कारणवसेण ॥ ११७ ॥

नन्दीश्वरपक्षस्थित पचमीदिनप्रभृतियावत्परपक्षे ।
स्थितत्रयोदश इति एतस्मिन्नन्तरे कारणवशेन ॥

वरिसिय चाउम्मासिय पडिकमण कप्पदे णिसामेदुं ।
तत्तो परं सुणंतस्स तप्पडिक्कमणसुणणजुदा ॥ ११८ ॥

वार्षिकीं चातुर्मासिकीं प्रतिक्रमणा कल्पते निशामयितु ।
तत. परं शृण्वतः तत्प्रतिक्रमणश्रवणयुक्ता ॥

बारस अट्ठ य चउरो उववासा विगुणिऊण दायव्वा ।
पक्खियपायच्छित्तं पक्खगणणाए दायव्वं ॥ ११९ ॥

---

१ कत्तियपूण्णिमपडिकमणे उववासा अट्ठ दायव्वा इति ख–पुस्तके पाठान्तरम् ।
२ पक्खिय. ख । ३ णिसामेह ख. । ४ [illegible], ख ।

द्वादश अष्टौ च चत्वार उपवासा द्विगुणीकृत्य दातव्याः ।
पाक्षिकप्रायश्चित्तं पाक्षिकगणनया दातव्यं ॥

जो पक्खमासचउमासवरिसमावासयं सुसंखित्तं ।
कुणइ य पेक्खयमणुमोदए सयं काउमसमत्थो ॥ १२० ॥

य: पक्षमासचतुर्मासवर्षं आवश्यक सुसंक्षिप्त ।
करोति च दृष्ट्वा अनुमोदयेत् स्वयं कर्तुमसमर्थः ॥

पायच्छित्तं कमसो खमणं पणयं च पंचकल्लाणं ।
गुरुमासचउक्कं पि य दायव्वं से गिलाणस्स ॥ १२१ ॥

प्रायश्चित्त क्रमश. क्षमण पंचक च पचकल्याण ।
गुरुमासचतुष्क अपि च दातव्य तस्य ग्लानस्य ॥

आवासयपरिहीणो इगिदुगमासे य वाहिदप्पेहिं ।
तो तस्स हवे छेदो लहुगुरुआमासचउमासा ॥ १२२ ॥

आवश्यकपरिहीन: एकद्विमासे च व्याधिदर्पाभ्या ।
तर्हि तस्य भवेच्छेद लघुगुरुकमासचतुर्मासा ॥

आवासयपरिहीणो जो उण उभयत्थ वुत्तकालादो ।
उक्कस्सादो परदो दायव्वा मूलभूमित्ति ॥ १२३ ॥

आवश्यकपरिहीनः यः पुन. उभयत्र उक्तकालत ।
उत्कृष्टत. परत दातव्या मूलभूमिरिति ॥

आवासयं—इत्यावश्यक ।

---

१ परपक्खय. ख । २ इगिदुगमासेहिं ख । ३ वुत्थकालादो. क । ४ अयं गाथासूत्रस्योत्तरार्धं क–पुस्तके नास्ति, ख–पुस्तकात् संयोजितः । ५ इदमपि क–पुस्तके नास्ति, ख–पुस्तके त्वस्ति ।

उवसग्गदो अणारोगदो कारणवसेण दप्पादो ।
गिहिअण्णतित्थलिंगग्गहणेणाचेलवदभंगे ॥ १२४ ॥

उपसर्गतः अनारोगतः कारणवशेन दर्पतः ।
गृह्यन्यतीर्थलिंगग्रहणेन अचेलव्रतभंगे ॥

जादे पायच्छित्तं खमणं छट्ठं कमेण संठाणं ।
मूलं पि य जणणादे दायव्वं एगवारम्मि ॥ १२५ ॥

जाते प्रायश्चित्त क्षमण षष्ठ क्रमेण सम्स्थानं ।
मूलमपि च जनज्ञाते दातव्य एकवारे ॥

अचेलक्कं—इत्यचेलक ।

ण्हाणे दंतग्घसणे गिहसज्जाए य रायदो सयणे ।
इगिवारे कल्लाणं बहुवारे पंचकल्लाणं ॥ १२६ ॥

स्नाने दन्तघर्षणे गृहिशय्यायां च रागतः शयने ।
एकवारे कल्याण बहुवारे पचकल्याण ॥

अण्हाण अदंतवण खिदिसेज्जा—इत्यस्नानं अदन्तमनं क्षितिशय्या ।

ठिदिभोयणेगभत्ते जाए दप्पेण एगबहुवारे ।
भग्गम्मि पणगमासिगदिवसंतवछेदमूलखिदी ॥ १२७ ॥

स्थितिभोजनैकभक्त जाते दर्पेण एकबहुवारे ।
भग्ने पंचकमासिकदिवसतपच्छेदमूलक्षितयः ॥

ठिदिभोयणेगभत्तं—इति स्थितिभोजनैकभक्ते ।

---

१ अयं पूर्वार्धः क—पुस्तकेनास्ति, ख—पुस्तकात् संयोजितः । २ गिहत्थ ख । ३ अदंतघसण ख । ४ खिदिसयणं ख । ५ रुजाए ख । रुजा ।

इंदियसमिदिअदंतवणलोचखिदिसवणभंजणे चेवं[1] ।
काउस्सग्गुववासा सेसाणं भंजणे तह यं[2] ॥ १२८ ॥

इन्द्रियसमित्यदन्तमनलोचक्षितिशयनभजने चैव ।
कायोत्सर्गोपवासौ शेषाणां भजने तथा च ॥

मूलगुणा-इति मूलगुणा ।

तरुमूलथिरादावणजोगे भग्गम्मि सप्पडिक्कमणे[3] ।
एयंतरोववासा चउरो मासा य दायव्वा ॥ १२९ ॥

तरुमूलस्थिरातापनयोगे भग्ने सप्रतिक्रमणा ।
एकान्तरोपवासाः चत्वारो मासाश्च दातव्याः ॥

अण्णे भणंति जोगावसेसदिवसावसाणसमउत्ति ।
एयंतरोववासा सपडिक्कमणा य दायव्वा ॥ १३० ॥

अन्ये भणंति योगावशेषदिवसावसानसमयं इति ।
एकान्तरोपवासाः सप्रतिक्रमणाश्च दातव्याः ॥

तरुमूलजोगभंग्गं रोगिगं[4] णिसाए जणेसु सुत्तेसु ।
गुत्तेण वसहिअब्भंतरम्मि सो-वाविऊण गणी ॥ १३१ ॥

तरुमूलयोगभग्न रोगाङ्गं[?] निशि जनेषु सुप्तेषु ।
गुप्तेन वसत्यभन्तरे स-आनीय[?] गणी ॥

णीहारइ तेसु अणुट्ठिएसु[5] जदि रोगपसवणदिंणंतं[6] ।
तो तस्स हवदि छेदो सपडिक्कमणं तु मूलगुणं ॥ १३२ ॥

---

१ असइ ख । २ मूलं ख । ३ मणा ख । ४ जेगिग क । ५ अणिट्ठिएसु क । ६ दिणता ख ।

नीहास्यति तेषु अनुष्ठितेषु यदि रोगप्रशमनदिनान्तं ।
तर्हि तस्य भवति च्छेदः सप्रतिक्रमणं तु मूलगुण ॥

जो रुक्खमूलजोगी तट्ठाणं गच्छदे ण वेलाए ।
सालोयणविउस्सग्गो पायच्छित्तं हवे तस्स ॥ १३३ ॥

य. वृक्षमूलयोगी तत्स्थानं गच्छति न वेलया ।
सालोचनव्युत्सर्गः प्रायश्चित्तं भवेत्तस्य ॥

तरुमूलब्भोवासयतोरणठाणादिजोगसंजुत्तो ।
अण्णस्स अप्पणो वा वेज्जावच्चादिकरणट्ठं ॥ १३४ ॥

तरुमूलाभ्रावकाशतोरणस्थानादियोगसयुक्त ।
अन्यस्य आत्मनो वा वैयावृत्यादिकरणार्थं ॥

जदि एग निसं वसहियमज्झे सो वसेदि तहा[1] य दायव्वं ।
पायच्छित्तं तस्स दु सपडिक्कमणं खमणमेगं ॥ १३५ ॥

यदि एका निशा वसतिमध्ये स वसति तथा च दातव्य ।
प्रायश्चित्त तस्य तु सप्रतिक्रमणं क्षमणमेकं ॥

अथिरादावणअब्भोवमासजोगम्मि भग्गए छेदो ।
मूलगुणं पडिकमणं पुरोगपरदेसगमणं च ॥ १३६ ॥

अस्थिरातापनाभ्रावकशयोगे भग्ने छेदः ।
मूलगुण प्रतिक्रमण पुरोगपरदेशगमनं च ॥

ठाणासणादिजोगे णिरवधिये सव्वहा वि परिचत्ते ।
पायच्छित्तं कल्लाणपंचयं सपडिक्कमणं ॥ १३७ ॥

---

1 तदा य ख।

स्थानासनादियोगे निरवधिके सर्वथापि परित्यक्ते ।
प्रायश्चित्तं कल्याणपंचक सप्रतिक्रमणं ॥

सावधिगे परिचत्ते तत्तो ऊणं दिणावधिवसेण ।
आधक्के कदभगे सपडिक्कमणं खमणमेगं ॥ १३८ ॥

सावधिके परित्यक्ते ततः ऊन दिनावधिवशेन ।
अधिके कृतभगे सप्रतिक्रमण क्षमणमेक ॥

भंगम्मि वरिसकालियजोगे पढमिल्लपच्छिमे पक्खे ।
कमसो सपडिक्कमणा देया गुरुमासलहुमासा ॥ १३९ ॥

भगे वर्षाकाल्योगे प्रथमपश्चिमे पक्षे ।
क्रमशः सप्रतिक्रमणौ दातव्यौ गुरुमासलघुमासौ ॥

मज्झिमपक्खेसु पुणो जोगे भंगम्मि होंति दायव्वा ।
जोगावसेसदिवसपमाणे[1] एयंतरुववासा ॥ १४० ॥

मध्यमपक्षेषु पुन. योगे भग्ने भवन्ति दातव्या ।
योगावशेषदिवसप्रमाणा एकान्तरोपवासा. ॥

कोहेण व लोहेण व दप्पेण व वरिसकालजोगम्मि ।
भंगम्मि इमं पायच्छित्त होदित्ति विंति परे ॥ १४१ ॥

क्रोधेन वा लोभेन वा दर्पेण वा वर्षाकाल्योगे ।
भग्ने इद प्रायश्चित्त भवतीति ब्रुवन्ति परे ॥

जदि पुण परवादिविवादकरणसण्णासंसंघकज्जाइं ।
आयाई होज्ज वरिसकालियजोगस्स मज्झयारम्मि[2] ॥ १४२ ॥

---

१ पमाणा ख । २ मज्झम्मि ख ।

यदि पुनः परवादिविवादकरणसंन्याससंघकार्याणि ।
जातानि भवन्ति वर्षाकालयोगस्य मध्ये ॥

तो देसंतरगमणं वि ण पडिसिद्धं हवे सुविहिदाणं ।
सयलरिसिसंघसमयकज्जं करणिज्जमेव जदो ॥ १४३ ॥

तर्हि देशान्तरगमनमपि न प्रतिसिद्धं भवेत् सुविहितानां ।
सकलर्षिसंघसमयकार्ये करणीयमेव यतः ॥

बारहजोयणमज्झे जादे सल्लेहणम्मि साहूहिं ।
एगग्गामियभोयणसयणाइं अकुणमाणेहिं ॥ १४४ ॥

द्वादशयोजनमध्ये जातायां सल्लेखनायां साधुभि. ।
एकग्रामिकभोजनशयने अकुर्वाणैः ॥

जोगे गहिदम्मि वरिसयालमज्झिम्मि होदि गंतव्वं ।
तेणेव कमेणागंतव्वं एसा पुराणठिदी ॥ १४५ ॥

योगे गृहीते वर्षाकालमध्ये भवति गन्तव्य ।
तेनैव क्रमेणागन्तव्य एषा पुराणस्थितिः ॥

सण्णासणकाले पुण जायंतो मुणिवरो जदि पछेज्ज ।
कइविसूचियादीहिं मलहरणं तस्स दायव्वं ॥ १४६ ॥

सन्यासकाले पुन· याचमानो मुनिवरो यदि दृश्येत ।
कृतविसूचिकादिभि मलहरण तस्य दातव्यं ॥

पढमे पक्खे पणगं अंतिमपक्खेण दोण्णि उववासा ।
मज्झिमपक्खेसु पुणो दायव्वो दोण्णि पणगं तु ॥ १४७ ॥

---

१ समुदायकज्ज क। २ एगगामो, क. । ३-४ इमे गाथासूत्रे ख पुस्तके न स्तः।

प्रथमे पक्षे पंचक अंतिमपक्षेन द्वौ उपवासौ ।
मध्यमपक्षेषु पुनः दातव्ये द्वे पचके ॥

एगं णिसण्णदी सहु[1] रोधणरोगादिकारणवसेण ।
अण्णत्थ वरिसयाले जदि वसदि मुणी तदा तस्स ॥ १४८ ॥

एकत्र निष्ण सन् रोधनरोगादिकारणवशेन ।
अन्यत्र वर्षाकाले यदि वसति मुनिस्तदा तस्य ॥

अण्णेहिं अविण्णादे देयं पडिकमणमेयखमणं च ।
णादे आदिमअंतिममज्झिमपक्खुत्तमलहरणं ॥ १४९ ॥

अन्यैरविज्ञाते देय प्रतिक्रमण एकक्षमण च ।
ज्ञाते आदिमान्तिममध्यमपक्षोक्तमलहरण ॥

सल्लेहणस्स पक्खे खमियस्स परीसहेहिं भग्गस्स ।
अण्णं पाण जाचतयस्स गणिणा वि कुसलेण ॥ १५० ॥

सल्लेखनायाः पक्षे क्षमितस्य परीषहै. भग्नस्य ।
अन्न पान याचमानस्य गणिनापि कुशलेन ॥

पच्छण्णेण अधिच्चत्तम्मि दिणम्मि सपडिकमणं ।
उट्ठिदणिविट्ठभोजिस्स दिवा खमणं च छट्ठदुगं ॥१५१॥

प्रच्छन्नेन अधित्यक्ते ? दिने सप्रतिक्रमण ।
उत्थितनिविष्टभोजिनः दिवा क्षमण च षष्ठद्विकम् ॥

उट्ठिदणिविट्ठभोजिस्स अण्णेहिं विजाणिदस्स दिवसम्मि ।
लहुमासो गुरुमासो रयणिभोजिस्स पुव्वुत्त ॥१५२॥

---

[1] एगं णिसण्णदी स हु क ।

उत्थितनिविष्टभोजिनः अन्यैः विज्ञातस्य दिवसे ।
लघुमास. गुरुमासः रजनीभोजिनः पूर्वोक्तं ॥

उत्तरगुणं–इत्युत्तरगुणा ।

अण्णाणअहंकारेहिं एगबहुवारमासए छेदो ।
अप्पासुगे वसंतस्सुववासो पणय मासिगं मूलं ॥१५३॥

अज्ञानाहंकाराभ्या एकबहुवारमाश्रित्य छेदः ।
अप्रासुके वसतः उपवासः पचक मासिकं मूलं ॥

अण्णाणधम्मगारवहेदूहिं गामपुरघरारंभे ।
भासंतस्सुवसोही पणगं संठाणगं मूलं ॥ १५४ ॥

अज्ञानधर्मगर्वहेतुभिः ग्रामपुरगृहारभान् ।
भाषमाणस्योपशुद्धिः पंचक संस्थानक मूलं ॥

पूजारंभं जो कारवेदि अण्णाणदो गिहत्थेहिं ।
इगिवारे सालोयण विउसग्गो खमणमेगं तु ॥ १५५ ॥

पूजारम्भ य कारयति अज्ञानतो गृहस्थैः ।
एकवारे सालोचनः व्युत्सर्गः क्षमणमेकं तु ॥

बहुवारेसु य पणगं सपडिक्कमणं तु तस्स दायव्वं ।
जाणंतस्सिगिवारे सपडिक्कमणं पणगमेगं ॥ १५६ ॥

बहुवारेषु च पंचकं सप्रतिक्रमणं तु तस्य दातव्यं ।
जानानस्य एकवारे सप्रतिक्रमणं पचकमेकं ॥

---

१ अण्णाणधम्मगारवेहिं जदि गामपुरघरारंभं इति क–पुस्तके पाठः । २ वा. ख ।

बहुवारे गुरुमासो दायव्वो तस्स पडिकमणं ।
छज्जीवणिकायाणं बहूण घायम्मि मूलखिदी ॥ १५७ ॥

बहुवारे गुरुमासो दातव्यस्तस्य सप्रतिक्रमणः ।
षड्जीवनिकायाना बहूना घाते मूलक्षितिः ॥

तित्थयरादीणमवण्णवादिणो संघस्स अयसकारिस्स ।
पब्भट्ठवदसमासेविणाय खमणं सपडिक्कमणं ॥ १५८ ॥

तीर्थंकरादीनामवर्णवादिने सघस्य अयशस्कारिणे ।
प्रभ्रष्टव्रतममासेविने क्षमण सप्रतिक्रमण ॥

वाहिपडिकारहेदुं वमणं च विरेयणं सिरावेधं ।
णियदेहे काराविदमुणिणो छट्ठतवं छेदो ॥ १५९ ॥

व्याधिप्रतिकारहेतु वमन च विरेचन च सिरावेधं ।
निजदेहे कारापितमुनये षष्ठतपः छेद. ॥

अण्णे भणंति एदं पायच्छित्त सदप्पदोसस्स ।
वुत्तं पमादजादस्स होइ एयस्स अद्धमिदि ॥ १६० ॥

अन्ये भणन्ति एतत्प्रायश्चित्त सदर्पदोषस्य ।
उक्तं प्रमादजातस्य भवति एतस्य अर्धमिति ॥

जो दंसणपब्भट्ठं घेत्तूणं संजदो विहारिज्ज ।
पायछित्तं तस्स य मूलगुणं होइ दायव्वं ॥ ६१ ॥

य. दर्शनप्रभ्रष्टं आदाय सयतः विहरेत् ।
प्रायश्चित्तं तस्य च मूलगुण भवति दातव्यं ॥

---

१ अमसंसकारिस्स. ख । २ एवं. ख ।

विज्जाचोज्जणिमित्तं मंतं चुण्णाणि मूलकम्मं च ।
जो कुणदि सादहेदुं तस्सुववासो सपडिकमणो ॥ १६२ ॥

विद्यातोद्यनिमित्तं मन्त्रं चूर्णानि मूलकर्म च ।
यः करोति सादहेतुं तस्योपवासः सप्रतिक्रमणः ॥

सालोयणविउसग्गो सुत्तत्थं चोरियाए गेण्हंतो ।
पुच्छाविणयविहीणो दिंतो वि य पुच्छमगणंतो ॥ १६३ ॥

सालोचनव्युत्सर्गः सूत्रार्थं चुर्या गृह्णन् ।
पृच्छाविनयविहीनः ददत् अपि च पृच्छामगणयन् ॥

सुत्तत्थमुवदिसंतो असमाहिं सिक्खयाण जो कुणइ ।
सुदगुरुणिण्हवगो जो तस्स य खमणं हवदि छेदो ॥ १६४ ॥

सूत्रार्थमुपदिशन् असमाधिं शिष्याणां यः करोति ।
श्रुतगुरुनिन्हवको यः तस्य च क्षमणं भवति च्छेदः ॥

सिक्खंतो सुत्तत्थं अणिमादो चेव गच्छदि परत्थं ।
कोहादिकारणेहिं तस्स चउत्थं हवे छेदो ॥ १६५ ॥

शिक्षन् सूत्रार्थं अनियमतः चैव गच्छति परत्र ।
क्रोधादिकारणैः तस्य चतुर्थं भवेच्छेदः ॥

संथारमसोहिंतस्स पयदअपयदचारिणो होंति ।
खमणद्धं खमणं च य अण्णे खमणं च पणगं च ॥ १६६ ॥

संस्तरमशोधयतः प्रयत्नाप्रयत्नचारिणः भवंति ।
क्षमणार्धं क्षमणं च च अन्यस्मिन् क्षमणं च पंचकं च ॥

१ मूलकम्मं च. ख । २ सदेहेदुं. क । ३ दिंति. ख । ददाति । ४ चेय. ख । चैव ।

णट्ठे अयउवयरणे तस्सुच्छेहंगुलप्पमाणाई ।
खवणाइं देंति केई घणंगुलपमाणाइं परे ॥ १६७ ॥

नष्टे अयउपकरणे तस्योत्सेधाङ्गुलप्रमाणानि ।
क्षमणनि ददति केचित् घनाङ्गुलप्रमाणानि परे ॥

जिणपडिमागमपोच्छयणासे खमणादिएगकल्लाणं ।
मणिरयणकणयपडिमाणासे पणगादिमासियं छेदो ॥ १६८ ॥

जिनप्रतिमागमपुस्तकनाशे क्षमणाद्येककल्याणं ।
मणिरत्नकनकप्रतिमानाशे पचकादिमासिकं छेदः ॥

सेसुवयरणविणासे रूवादीणं च घादकरणे य ।
काउस्सग्गो छेदो मणदुप्परिणामकरणे य ॥१६९ ॥

शेषोपकरणविनाशे रूपादीना च घातकरणे च ।
कायोत्सर्ग छेद मनोदुष्परिणामकरणे च ॥

जे वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायाद्वा ।
तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव संसि (सु) द्धी ॥ १७० ॥

येऽपि च अन्यगणत· निजगणे अध्ययनहेतुना आयाताः ।
तेषामपि तादृशाना आलोचना एव सशुद्धि· ॥

आयरियादिरिसीहि य आणावियदीवयपवंचेण ।
सण्णासादिणिमित्तं जिणभवणं जइ पमाएण ॥ १७१ ॥

आचार्यादि—ऋषिभि. आज्ञापितदीपकप्रपंचेन ।
सन्यासादिनिमित्तं जिनभवनं यदि प्रमादेन ॥

---

१ इदं गाथासूत्रं ख-पुस्तके १६१ गाथासूत्रत पूर्वं १६२ गाथासूत्रतश्च पश्चाद् वर्तते । २ इदं गाथासूत्रं ख-पुस्तकेऽत्र स्थले नास्ति ।

दड्ढं हवेज्ज तो सो पक्खुववासं करेज्ज संघवई ।
तिण्णि[1] पडिकमणा[2] पंच पंच उववासपरियंते[3] ॥ १७२ ॥

दग्धं भवेत्तर्हि स पक्षोपवासं कुर्यात् संघपतिः ।
तिस्रः प्रतिक्रमणाः पंचपंचोपवासपर्यन्ताः ॥

अह जइ सत्तिविहीणो तो तिण्णि दुवालसाइं कुणउ मुणी ।
तिण्णि पडिकमणंताइं तप्पडिबद्धो तवो अहवा ॥ १७३ ॥

अथ यदि शक्तिविहीनः तर्हि त्रीन् उपवासान् करोतु मुनिः ।
त्रीणि प्रतिक्रमणान्तानि तत्प्रतिबद्धं तपोऽथवा ॥

चूलिका–इति चूलिका ।

आलोयण पडिकमणो उभय विवेगो तहा विउस्सग्गो ।
तव परियायच्छेदो मूलं परिहार सद्दहणा ॥ १७४ ॥

आलोचना प्रतिक्रमण उभयं विवेकः तथा व्युत्सर्गः ।
तप पर्यायच्छेदः मूल परिहारः श्रद्धान ॥

एवं दसविध समए पायच्छित्तं रिसीगणे[4] भणियं ।
तं केरिसेसु दोसेसु जायदे इदि पयासेमो[5] ॥ १७५ ॥

एव दशविध समये प्रायश्चित्त ऋषिगणेन भणितम् ।
तत् कीदृशेषु दोषेषु जायते इति प्रकाशयामः ॥

आवावणादिजोगग्गहणं उब्भामगादिगमणं वा ।
गणिगणवसभादीणं अपुच्छमाणेण जेण कयं ॥ १७६ ॥

---

१ तिण्णि, ख । २ कमणे, ख । ३ अता ख । अयं चूलिकाशब्द- क–पुस्तके १७३ गाथातः पूर्वं १७२ गाथातः पश्चाच्च । ४ गणी ख । ५ समासदो ख ।

आतापनादियोगग्रहणं उद्भ्रामकादिगमनं वा ।
गणिगणवृषभादीनां अपृच्छमानेन येन कृतं ॥

पोत्थयपिच्छकमंडलुवक्कलयादि परेसिमुवयरणं ।
तेसिं परोक्खदो णियकज्जेणुवभोगियं जेण ॥ १७७ ॥

पुस्तकपिच्छिकाकमडलुवल्कलादि परेषा उपकरण ।
तेषा परोक्षत निजकार्येण उपभोगित येन ॥

गणहरवसहादीणं भणियं ण कयं पमाददोसेण ।[1]
सो आलोयणमित्तेण सुज्झए गुरुसयासम्हि ॥ १७८ ॥

गणधरवृषभादीना भणित न कृत प्रमाददोषेण ।
स आलोचनामात्रेण शुद्ध्यति गुरुसकाशे ॥

जे गच्छादो संहाहिवादिकज्जेण निग्गया मुणिणो ।[2]
पंचसमिदा तिगुत्ता जिदिंदियपरीसहा वीरा ॥ १७९ ॥[3]

ये गच्छत संघाधिपतिकार्येण निर्गता मुनय ।
पचसमिता त्रिगुप्ता जितेन्द्रियपरीषहा वीरा ॥

पंथादिचारपमुहादिचारं संसोधया हु तद्दियहं ।
तेसिं पुणागयाण आलोयणमेव संसोही ॥ १८० ॥

पथ्यतिचारप्रमुखातिचारं सशोधका हि तद्दिवस ।
तेषा पुनरागताना आलोचनमेव सशुद्धि. ॥

जे वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायादा ।
तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव संसुद्धी ॥ १८१ ॥[4]

---

१ पमाददो जेण. ख । प्रमादत येन । २ धा. ख । ३ धीरा ख । ४ इदं गाथासूत्रं पूर्वमपि (१७०) आगतं ।

येऽपि च अन्यगणतो निजगणे अध्ययनहेतुना आयाताः ।
तेषामपि तादृशाना आलोचना एव संशुद्धिः ॥

आलोयणं–इत्यालोचना ।

मणवयणकायदुप्परिणामो अप्पाणयम्मि अप्पयरो ।
जस्सुप्पण्णो जेण य साधम्मीए ण विहीओ विणओ ॥ १८२ ॥

मनवचनकायदुष्परिणाम आत्मनि अल्पतर· ।
यस्योत्पन्न· येन च सधर्मके न विहितो विनय. ॥

आयरियादिसु णियहत्थपायसंघट्टणं च जेण कयं ।
मिच्छा मे दुक्कडमिदि पडिक्कमणेण विसुज्झदि सो ॥१८३॥

आचार्यादिषु निजहस्तपादसंघट्टनं च येन कृत ।
मिथ्या मे दुष्कृतं इति प्रतिक्रमणेन विशुद्ध्यति स. ॥

दिवसियरादियगोयरणिसीधिकागमणसंभवमलेसु ।
तं णियमकरणमेत्तं पडिकमणं होइ सुद्धियरं ॥ १८४ ॥

दैवसिकरात्रिकगोचरनिषेधिकागमनसभवमलेषु ।
तन्नियमकरणमात्र प्रतिक्रमण भवति शुद्धिकर ॥

पंचसु महव्वएसु य समिदीगुत्तीसु थोवअदिचारे ।
तह कोहमाणमायालोहेसु फुडं उदिण्णेसु ॥ १८५ ॥

पचसु महाव्रतेषु च समितिगुप्तिषु स्तोकातिचारे ।
तथा क्रोधमानमायालोभेषु स्फुट उदीर्णेषु ॥

---

१ अणयम्मि क । २ अदिण्णेसु, ख ।

चक्खिदियादिदुप्परिणामे पेसुण्णकलहअब्भक्खाणे ।
वेज्जाविच्चपमादे सज्झायज्झाणवाघादे ॥ १८६ ॥

चक्षुरिन्द्रियादिदुष्परिणामे पैशून्यकलहाभ्याख्याने ।
वैयावृत्यप्रमादे स्वाध्यायाध्ययनव्याघाते ॥

गोयरगयस्स लिंगुट्ठाणे अण्णस्स संकिलेसे य ।
णिंदणगरहणजुत्तो णियमो वि य होदि पडिकमणं ॥ १८७॥

गोचरगतस्य लिंगोत्थाने अन्यस्य सक्लेशे च ।
निन्दनगर्हणयुक्त नियमोऽपि भवति प्रतिक्रमणं ॥

पडिकमण—इति प्रतिकमणं ।

लोचणहच्छेदसुमिणिंदियादिचारेगकोसगमणेसु ।
सुमिणणिसिभोयणे वि य णियमो आलोयणा उभयं ॥ १८८॥

लोचनखच्छेदस्वप्नेन्द्रियातिचारैककोशगमनेषु ।
स्वप्ननिशिभोजनेऽपि च नियम आलोचना उभय ॥

पक्खियचाउम्मासियसंवच्छरियादिदोससुद्धियरं ।
आलोयणापुरस्सर पडिकमणणिसामणं उभयं ॥ १८९ ॥

पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकादिदोषशुद्धिकर ।
आलोचनापुर सरं प्रतिक्रमणनिशामनं उभयं ॥

उभय—इत्युभय ।

पिंडोवधिसेज्जाओ अजाणमाणेण जदि असुद्धाओ ।
गिहिदाओ तदो णादे ताण विवेगो परिच्चागो ॥ १९० ॥

पिंडोपधिशय्याः अजानमानेन यदि अशुद्धाः ।
गृहीताः तदा ज्ञाते तासां विवेकः परित्यागः ॥

सुद्धम्मि अण्णपाणे सुद्धमसुद्धं ति जणियसंदेहो ।
अहवा असुद्ध ति वियप्पिदे विवेगो परिच्चागो ॥ १९१ ॥

शुद्धे अन्नपाने शुद्धं अशुद्धं इति जनितसंदेहः ।
अथवा अशुद्धमिति विकल्पिते विवेकः परित्यागः ॥

जं उवहिं सेज्जं पडि उप्पज्जदि अप्पणो कसायग्गी ।
तम्मि हवे परिहरिदे पायच्छित्तं विवेगोत्ति ॥ १९२ ॥

यमुपधिं शय्यां प्रति उत्पद्यते आत्मनः कषायाग्निः ।
तस्मिन् भवेत् परिहृते प्रायश्चित्तं विवेक इति ॥

पच्चक्खियअण्णपाणे भायणपाणीमुहेसु संपत्ते ।
देसेण य सव्वेण य विकिंचमाणे वि हु विवेगो ॥ १९३ ॥

प्रत्याख्यातान्नपाने भाजनपाणिमुखेषु सम्प्राप्ते ।
देशेन च सर्वेण च विकिंचमानेऽपि हि विवेकः ॥

विवेगो—इति विवेकः ।

लोचाहियास[1] (अ) विरहे उदरकिमिणिग्गमणे मिहिगा-
दंसमसगादिजंतुमहावादसण्णिपातोपचारे य ॥ १९४ ॥

लोचाभिजातविरहे उदरक्रिमिनिर्गमने मिहिका-
दंशमशकादिजन्तुमहावातसन्निपातोपचारे च ॥

---

1 लोचादहामविरहे. ख ।

ससिणिद्धभूमिगमणे हरिदतणादीणमुवरि चंकमिदे ।
पंकब्भंतरगमणे जाणुमिदजलप्पवेसे य ॥ १९५ ॥

सस्निग्धभूमिगमने हरिततृणादीनामुपरि चक्रमिते ।
पंकाभ्यन्तरगमने जानुमितजलप्रवेशे च ॥

अण्णणिमित्तपउंजिददोणीणावादिणा णदीतरणे ।
उच्चारं पस्सवणं काऊणं उववासयागमणे ॥ १९६ ॥

अन्यनिमित्तप्रयुक्तद्रोणीनावादिना नदीतरणे ।
उच्चारं प्रस्रवण कृत्वा उपवासकागमने ॥

पोत्थयजिणपडिमाफोडणम्मि पंचविहथावरविघादे ।
रत्तीए असमदेक्खिददेसे तणुमलविसग्गे य ॥ १९७ ॥

पुस्तकजिनप्रतिमास्फोटने पचविधस्थावरविघाते ।
रात्रौ अदृष्टदेशे तनुमलविसर्गे च ॥

एक्को काउस्सग्गो पायच्छित्तं जिणेहिं पण्णत्तं ।
वितिचउरिंदियघादे वियतियचउरो विउस्सग्गा ॥ १९८ ॥

एक कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त जिनै प्रज्ञप्त ।
द्वित्रिचतुरिन्द्रियघाते द्विकत्रिकचत्वारो व्युत्सर्गा. ॥

उज्जोए पडिलिहियं दाउं संथारयं णिसि पसुत्तो ।
उव्वत्तणपरियत्तणणिग्गमणविवज्जिदो पयदो ॥ १९९ ॥

उद्योते प्रतिलेखित्त आदाय सस्तरकं निशि प्रसुप्तः ।
उद्वर्तनपरिवर्तननिर्गमनविवर्जितः प्रयत्नः ॥

---

१ य वासयागमणे ख । २ पाडणम्मि ख, पातने ।

जदि संथारसमीवे पेच्छइ पंचिंदियं मुदं सूरुदये ।
तो तस्स हवे छेदो पंचविउस्सग्गपरिमाणो ॥ २०० ॥

यदि संस्तरसमीपे प्रेक्षते पंचेन्द्रिय मृतं सूर्योदये ।
तर्हि तस्य भवेच्छेद: पचव्युत्सर्गपरिमाणः ॥

दिवसियरादियपक्खियचउमासियवरिसयादिकिरियाण ।
चरिमे ऊणक्खूणणिमित्त एगो विउस्सग्गो ॥ २०१ ॥

दैवसिरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकवार्षिकादिक्रियाणा ।
चरमे ऊनाधिक्यनिमित्त एको व्युत्सर्ग ॥

सिद्धंतसुणणवक्खाणावसाणे अंगपहुदिपुव्वाण ।
परियट्टणावसाणे ऊणक्खूणणिमित्तं विउस्सग्गो ॥ २०२ ॥

सिद्धान्तश्रवणव्याख्यानावसाने अगप्रभृतिपूर्वाणा ।
परिवर्तनावसाने ऊनाधिक्यनिमित्त व्युत्सर्गः ॥

विउसग्गो इति व्युत्सर्ग ।

णिव्वियडी पुरिमंडल आयंबिलमेयठाण खमणमिदि ।
एसो तवोत्ति भणिओ तवोविहाणप्पहाणेहि ॥ २०३ ॥

निर्विकृतिः पुरिमंडलं आचाम्ल एकस्थान क्षमणमिति ।
एतत्तप इति भणितः तपोविधानप्रधानैः ॥

पुध पुध वा मिस्सो वा उग्घाडो वा तहा अणुग्घाडो ।
छम्मासेहिं य परदो णत्थि तवो वीरजिणतित्थे ॥ २०४ ॥

---

१ अंगपुव्वपहुदीणं, ख । २. ऊण इति क-पुस्तके नास्ति ।

प्रथक् पृथग्वा मिश्र वा उद्घाटं वा तथा अनुद्घाटं ।
षण्मासैश्च परतः नास्ति तपो वीरजिनतीर्थे ॥

उग्घादो संतरिदो वीसमणजुदो तदण्णहा इदरो ।
वाहिगिलाणादीणं पढमो इदराण पुण इदरो ॥ २०५ ॥

उद्घाट सान्तरित विश्रमणयुक्त तदन्यथा इतरत् ।
व्याधिग्लानादीना प्रथम इतरेषा पुनः इतरत् ॥

उव्वत्तण परियत्तण कंडुंवण उंटणं पसारणयं ।
कुव्वंतो अपमज्जिददेहो पणयारिहो होई ॥ २०६ ॥

उद्वर्तन परिवर्तनं कडूयनं आकुचन प्रसारण ।
कुर्वन् अप्रमार्जितदेहः पंचकार्हो भवति ॥

कुड्डु खंभं भूमिं वक्कलयादीण अप्पडिलिहित्ता ।
आमासइ उट्ठंघइ वइसइ तो होइ पणयं से ॥ २०७ ॥

कुड्य स्तम्भ भूमि वल्कलादींश्च अप्रतिलिख्य ।
आश्रयति उत्तिष्ठति वसति तर्हि भवति पचकं तस्य ॥

वियडिं तिण कट्ठं वा रात्रो व दिया व अप्पडिलिहित्ता ।
गेण्हंतो चालतो पणयरिहो कप्पववहारे ॥ २०८ ॥

वियडिं तृण काष्ठ वा रात्रौ दिवि वा अप्रतिलिख्य ।
गृह्णन् चालयन् पचकार्हः कल्पव्यवहारे ॥

उच्चारं पस्सवण कलिं च पासाणवियडियादीयं ।
अपमज्जिददेसम्मि विकिंचंतो होइ पणयरिहो ॥ २०९ ॥

१ कडुअणा क । २ सोइ क । ३ सो ख ।

उच्चारं प्रस्रवणं कलिं च पाषाणवियडिकादिकं ।
अप्रमार्जितदेशे विकुर्वन् भवति पंचकार्हः ॥

कंटय कलिं च पासाणछल्लितणकट्ठखप्परादीयं ।
अंगुलिणहदंतेहिं छिंदंतो होइ पणयरिहो ॥ २१० ॥

कंटकान् कलिं च पाषाणत्वक्तृणकाष्ठखर्परादिकं ।
अंगुलिनखदन्तैः छिन्दन् भवति पंचकार्हः ॥

पायच्छित्तं दिण्णं कुव्वंतो जदा अंतरिज्ज रोगेण ।
तो णीरोगो संतो पणयरिहो कप्पववहारे ॥ २११ ॥

प्रायश्चित्त दत्त कुर्वन् यदा अन्तरियात् रोगेण ।
तर्हि नीरोग. सन् पंचकार्हः कल्पव्यवहारे ॥

पायच्छित्तं दिण्णं कुव्वंतो जो सदेसपरदेसे ।
गुरुकज्जं साधिज्जो महल्लयं तस्स आयस्स ॥ २१२ ॥

प्रायश्चित्तं दत्त कुर्वन् यः स्वदेशपरदेशे ।
गुरुकार्यं साधयति महत् तस्य आगतस्य ॥

पुव्वपदिण्णं पायच्छित्तं छंडाविऊण पणयं तु ।
दायव्वमेव गुरुणा इय भणियं कप्पववहारे ॥ २१३ ॥

पूर्वप्रदत्तं प्रायश्चित्तं त्याजयित्वा पंचक तु ।
दातव्यमेव गुरुणा इति भणितं कल्पव्यवहारे ॥

उप्पण्णं पि कसाए मिच्छाकारो न तक्खणे कुज्जा ।
पणय महोरत्तगदे तेण परं मासियं छेदो ॥ २१४ ॥

---

१ इदं गाथासूत्रं ख-पुस्तके नास्ति ।

उत्पन्नेऽपि कषाये मिथ्याकारं न तत्क्षणे कुर्यात् ।
पञ्चकं मुहूर्तगते तेन परं मासिकं छेदः ॥

वसहिय दुवारमूले रादो पंचेंदियो मदो दिट्ठो ।
आवदिया णीसरिदा पविसंता एककल्लाणं ॥ २१५ ॥

उषित्वा द्वारमूले रात्रौ पञ्चेन्द्रियो मृतो दृष्टः ।
यावन्तः निःसरिता प्रविशन्तः एककल्याणं ॥

पणयं—इति पञ्चकं ।

णखहरणादि-छुरियादि-वासियादि-कुट्ठारियादीहिं ।
दंडादिहिं छिंदंतो लहुगुरुयामासचउमासा ॥ २१६ ॥

नखहरणादि-छुरिकादि-वास्यादि-कुठारादिभिः ।
दण्डादिभिः छिन्दन् लघुगुरुमासचतुर्मासाः ॥

मणिबंधचरणबाहुपसारण जो करावइ परेहिं ।
एय दु करेदि तस्स य लहुगुरुयामासचउमासा ॥ २१७ ॥

मणिबन्धचरणबाहुप्रसारणं यः कारयति परैः ।
एतत्तु करोति तस्य च लघुगुरुमासचतुर्मासाः ॥

चूरेइ हत्थपत्थरमुग्गरमुसलेहिं एय दु करेहिं ।
जो इट्टयादिगं से लहुगुरुआमासचउमासा ॥ २१८ ॥

चूरयति हस्तप्रस्तरमुद्गरमुसलैः एतत्तु करोति ।
यः इष्टकादिकं तस्य लघुगुरुमासचतुर्मासाः ॥

मासियं चउमासियं—इति मासिकं चतुर्मासिकं ।

---

१ इयं गाथा ख-पुस्तके नास्ति। २ तो पुस्तके पाठः ।

अइ वालवुड्ढदासेरगब्भिणीसंढकारुमादीणं ।
पव्वज्जा दिंतस्स हु छग्गुरुमासा हवदि छेदो ॥ २१९ ॥

अतिवालवृद्धदासेरगर्भिणीषढकार्वादीना ।
प्रव्रज्यां ददतः हि षड्गुरुमासा भवति च्छेदः ॥

विंति परे एवेसु व कारुग णिग्गंथदिक्खणे गुरुणो ।
गुरुमासो दायव्वो तस्स य णिग्घाडणं तह य ॥ २२० ॥

ब्रुवन्ति परे एतेषु च कारुषु निर्ग्रन्थदीक्षादायिने गुरवे ।
गुरुमासो दातव्यः तस्य च निर्घाटन तथा च ॥

णावियकुलालतेलियसालियकल्लाललोहयाराणं ।
मालारप्पहुदीणं तवदाणे विण्णि गुरुमासा ॥ २२१ ॥

नापितकुलालतैलिकशालिककलवारलोहकाराणा ।
मालाकारप्रभृतीना तपोदाने द्वौ गुरुमासौ ॥

चम्मारवरुडछिंपियखत्तियरजगादिगाण चत्तारि ।
कोसट्टयपारद्धियपासियसावणियकोलयादिसु अट्ठ ॥ २२२ ॥

चर्मकारवरुटछिंपकतक्षकरजकादिकाना चत्वारः ।
कोशल्कपारर्धिकपार्श्विकश्रावणिककोलिकादिषु अष्टौ ॥

चंडालादिसु सोलस गुरुमासा वाहडोंववाउरिया-
प्पहुदीणं वत्तीसं गुरुमासा होंति तवदाणे ॥ २२३ ॥

चडालादिषु षोडशगुरुमासा व्याधडोम्बवागुरिक-
प्रभृतीना द्वात्रिंशद्गुरुमासा भवन्ति तपोदाने ॥

चउसट्ठी गुरुमासा गोक्खयमावंगखट्टिकादीणं ।
णिग्गंथदिक्खदाणे पायच्छित्तं समुद्दिट्ठं ॥ २२४ ॥

चतुषष्टिः गुरुमासाः गोक्षयमातंगखटिकादीनां ।
निर्ग्रन्थदीक्षादाने प्रायश्चित्त समुद्दिष्टं ॥

कप्पव्ववहारे पुण छम्मासेहिं परं तु णत्थि तवो ।
इह वड्ढमाणतित्थे तेण य छम्मासियं दिण्णं ॥ २२५ ॥

कल्पव्यवहारे पुनः षण्मासै पर तु नास्ति तपः ।
इह वर्धमानतीर्थे तेन च षण्मासिकं दत्त ॥

छम्मासिय–इति षाण्मासिक ।

अण्ण वि य मूलुत्तरगुणादिचारेसु पुव्वमवि य तवो ।
वुत्तो जहारिहमिदो पुरिसे अधिकिच्च पुण भणिमो ॥ २२६ ॥

अन्यदपि च मूलोत्तरगुणातिचारेषु पूर्वमपि च तप ।
उक्त यथार्ह इत· पुरुषान् अधिकृत्य पुनः भणाम· ॥

आगाढाधंचपयत्तचारिअणुविचिणो सपडिवक्खा ।
अट्ठ णरा होंति पुणो सोलसधा अक्खसंचारे ॥ २२७ ॥

आगाढ प्रयत्नचार्यनुवीचीकाः सप्रतिपक्षाः ।
अष्टौ नरा भवन्ति पुनः षोडशधा अक्षसंचारे ॥

---

१ अविकिच्छमिह भणिमो, क । २ वञ्च ख । ३ यणुवीचीणो ख । ४ अस्माद्ग्रे ख–पुस्तके इद गाथासूत्र उपलभ्यते ।

पढमक्खे अंतगदे आदिगदे संकमे (दि) विदियक्खो ।
विण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि (तदि) यक्खो ॥
प्रथमाक्षे अन्तगते आद्यागते सक्रामति द्वितीयाक्ष ।
द्वावपि गत्वान्तं आद्यागते सक्रामति तृतीयाक्ष ॥
गाथेयं गोम्मटसारेऽपि वर्तते प्रमादसख्यागणनावसरे ।

णिव्वियडिआदिया जे पुव्वुत्ता पंचएक्कतीसंते ।
अक्खाणं संचारेणं होंति ते इह विहं जोगे ॥ २२८ ॥

निर्विकृत्यादिका ये पूर्वोक्ताः पंचैकत्रिंशदन्ताः ।
अक्षाणां संचारेण भवन्ति ते इह विध योगे ॥

पढमो सुद्धो सोलससु सेसपण्णारसा णरा कमसो ।
पण्णारसतवसलागा पढमादीया अणुचरंति ॥ २२९ ॥

प्रथम शुद्ध. षोडशेषु शेषपचदश नराः क्रमशः ।
पचदशतप शलाकाः प्रथमादिका अनुचरन्ति ॥

अवसेसतवसलागा सोलस पुवुत्तअट्ठपुरिसा वि ।
दो दो चरंति एवं दक्खिणमग्गो समुदिट्ठो ॥ २३० ॥

अवशेषतप.शलाकाः षोडश. पूर्वोक्ताष्टपुरुषा अपि ।
द्वे द्वे चरन्ति एव दक्षिणमार्गो समुदिष्टः ॥

उत्तरमग्गेण पढमो एयं सेसा चरंति दो दो य ।
अट्ठण्हं आइल्लो तिण्णि य चत्तारि अवसेसा ॥ २३१ ॥

उत्तरमार्गेण प्रथमः एकां शेषाः चरन्ति द्वे द्वे च ।
अष्टानां आदिमः तिस्रः च चतस्रः अवशेषाः ॥

अहवा पढमे पक्खे दसेसु दो दो य तिण्णि सोलसमे ।
मिस्ससलागा देया ताण ट्ठाणं सुणह कमेण ॥ २३२ ॥

अथवा प्रथमे पक्षे दशसु द्वे द्वे च तिस्रः षोडशे ।
मिश्रशलाका देया. तासा स्थानं शृणुत क्रमेण ॥

---

१ संचारे. ख-ग । २ विभजेणो, ख-ग ।

णवमी छव्वीसदिमा पढम दुइज्जा य पण्णरस तीसा ।
छट्ठी तेरसमी वि य चोद्दसी सत्तवीसदिमा ॥ २३३ ॥

नवमी षड्विंशतितमी प्रथमा द्वितीया च पञ्चदशी त्रिंशत्तमी ।
षष्ठी त्रयोदशमी अपि च चतुर्दशमी सप्तविंशतितमी ॥

सोलस बावीसदिमा बारस अट्ठवीसिमा तिय चउत्थी ।
चउवीसिमा पणवीसा अट्ठमि एयारसी चेव ॥ २३४ ॥

षोडशी द्वाविंशतितमी द्वादशमी अष्टाविंशतितमी तृतीया ।
चतुर्थी, चतुर्विंशतितमी पञ्चविंशतितमी अष्टमी एकादशमी ॥

अट्ठारस वीसदिमा सत्तम दसमी य एक्कवीसदिमा ।
तेवीसदिमा सत्तारसी य एऊणवीसदिमा ॥ २३५ ॥

अष्टादशमी विंशतितमी सप्तमी दशमी च एकविंशतितमी ।
त्रयोविंशतितमी सप्तदशमी च एकोनविंशतितमी ॥

पंचम उगुतीसदिमा इगितीसदिमा य होंति सोलसमे ।
मिस्ससलागा गेण्हह इगिदुतिचउपंचसंजोगे ॥ २३६ ॥

पञ्चमी एकोनत्रिंशत्तमी एकत्रिंशत्तमी च भवति षोडशे ।
मिश्रशलाकाः गृह्णीत एकद्वित्रिचतुःपञ्चसंयोगे ॥

अट्ठण्ह आदिण्णे मिस्ससलागाउ तिण्णि दायव्वा ।
सेसाणं चत्तारि य पुध पुध ताण सुणसु ठाणं ॥ २३७ ॥

अष्टानां आदिमे मिश्रशलाकाः तिस्रो दातव्याः ।
शेषानां चतस्रः च पृथक् पृथक् तेषां शृणुत स्थानं ॥

पढम दुइज्ज तइज्जा चउ पंचमिया य छट्ट तेरसमी ।
सत्तम अट्ठम चोद्दसमी वि य पण्णारसी चेव ॥ २३८ ॥

प्रथमा द्वितीया तृतीया चतुर्थी पचमी षष्ठी त्रयोदशमी ।
सप्तमी अष्टमी चतुर्दशमी अपि च पंचदशमी एव ॥

णवदसएक्कारसमी य बारसमी तह य चेव सोलसमी ।
अट्ठारसमी वावीसिमा य पुणु वीसिमा चेव ॥ २३९ ॥

नवदशैकादशमी च द्वादशमी तथा चैव षोडशी ।
अष्टादशमी द्वाविंशतितमी च पुनः विंशतितमी एव ॥

सत्तारसमी एगूणवीसिमा य चउवीसा ।
इगिवीसदिमा तेवीसिमा य छव्वीसतीसदिमा ॥ २४० ॥

सप्तदशी एकोनविंशतितमी च चतुर्विंशतितमी ।
एकविंशतितमी त्रयोविंशतितमी च षड्विंशतित्रिंशत्तम्यौ ॥

सत्तावीसदिमा वि य अट्ठावीसा य ऊणतीसदिमा ।
इगतीसदिमा य इमा मिस्ससलायाउ अट्ठण्हं ॥ २४१ ॥

सप्तविंशतितमी अपि च अष्टाविंशतितमी चैकोनत्रिंशत्तमी ।
एकत्रिंशत्तमी च इमा मिश्रशलाका अष्टाना ॥

अप्पप्पणोसलागापडिबद्धतव कारितु एयट्ठ ।
सव्वत्थ वि तवसखा दायव्वा बुद्धिमतेण ॥ २४२ ॥

स्वस्वशलाकाप्रतिबद्धतप. कर्तु एकार्थम् ।
सर्वत्रापि तप सख्या दातव्या बुद्धिमता ॥

तवो—इति तप ।

तवभूमिमदिक्कंतो मूलट्ठाण च जो ण संपत्तो ।
से परियायच्छेदो पायच्छित्तं समुद्दिट्ठं ॥ २४३ ॥

तपोभूमिमतिक्रामन् मूलस्थान च यः न संप्राप्तः ।
तस्य पर्यायच्छेदः प्रायश्चित्त समुद्दिष्टं ॥

णियगच्छादो णिग्गय एगागी विहरिऊण पुण आणं ।
जेत्तियकालपमाणा पव्वज्जा छिज्जए तस्स ॥ २४४ ॥

निजगच्छतो निर्गत्य एकाकी विहृत्य पुन आगमनं ।
यावत्कालप्रमाणा प्रव्रज्या छिद्यते तस्य ॥

पुव्वं जहुत्तचारी पच्छा पासत्थभावमुववण्णो ।
जेत्तियकालं विहरदि मुक्कधुरो सो समणणो पुणो ॥ २४५ ॥

पूर्वं यथोक्तचारी पश्चात् पार्श्वस्थभावमुपपन्न. ।
यावत्काल विहरति मुक्तधुर स श्रमण पुन. ॥

तेत्तियकालपमाणा पव्वज्जा तस्स छिज्जदि जदिस्स ।
पासत्थभावमुक्कुस्सुववण्णसुणिम्मलचरित्तं ॥ २४६ ॥

तावत्कालप्रमाणा प्रव्रज्या तस्य छिद्यते यते. ।
पार्श्वस्थभावमुक्तस्य उत्पन्नसुनिर्मलचरित्रस्य ॥

तस्सिस्साणं सोही सगणत्थाइरियणामगहणेण ।
लोचं काऊण तदो पडिकमण कुणउ ण हु अण्णं ॥ २४७ ॥

तस्य शिष्याना शुद्धि स्वगणस्थाचार्यनामग्रहणेन ।
लोचं कृत्वा तदा प्रतिक्रमण करोतु न हि अन्यत् ॥

पासत्थादीहिं समं आचरंतो सगिप्पमादेण ।
छम्मासब्भंतरदो जदि तद्दोसे णिसेवदि सो ॥ २४८ ॥

१ तक्काल, ख–ग । २ धरो, ख–ग । ३ समणपोल्लो ख–ग । ४ ब्बा, क ।

पार्श्वस्थादिभिः समं आचरन् स्वकप्रमादेन ।
षण्मासाभ्यन्तरतो यदि तद्दोषान् निषेवते सः ॥

तो से तवसा सुद्धी छम्मासेहिं परं तु कायव्वा ।
तं पव्वज्जाछेदो गुरुमूलमुवागयस्स पुणो ॥ २४९ ॥

तर्हि तस्य तपसा शुद्धिः षण्मासै. पर तु कर्तव्या ।
तत्प्रव्रज्याछेदो गुरुमूलमुपागतस्य पुनः ॥

कलहं काऊण खमावणमकाऊण एगदिविस रिसी ।
जदि वसदि णियगणे तस्स पंचदिवासियतवछेदो ॥ २५० ॥

कलहं कृत्वा क्षमापनं अकृत्वा एकदिवस ऋषि ।
यदि वसति निजगणे तस्य पचदैवसिकतपश्छेद· ॥

एलायरियस्स दिणाण दस आयरियस्स पण्णरसदिवसा ।
छिज्जंति परगणगयस्स पुण दसपण्णरसवीसदिणा ॥ २५१ ॥

एलाचार्यस्य दिनाना दशाचार्यस्य पचदशदिवसानि ।
छिद्यन्ते परगणगतस्य पुन दशपचदशविंशतिदिनानि ॥

एवं जेत्तियदिवसा अखमावितो सगण परगणे वा ।
अत्थंति तसो तेत्तियदिवसगुणो ताण तवछेदो ॥ २५२ ॥

एवं यावद्दिवसानि अक्षमापयन् स्वगणे परगणे वा ।
तिष्ठन्ति ततः तावद्दिवसगुण तेषां तपश्छेद. ॥

छेदो–इति च्छेद· ।

जो अपरिमिदपराधो तवछेदेण विणा सुद्धिमुवयादि ।
संभोगकरणजोग्गो मूलविदी विज्जदे तस्स ॥ २५३ ॥

योऽपरिमितपराधः तपश्छेदेन विना शुद्धिमुपयाति ।
संभोगकरणयोग्य मूलक्षिति दीयते तस्य ॥

पंचमहव्वदभट्ठो छावासयवज्जिदो णिरणुतावी ।
उस्सुत्तकारउ तह सच्छंदो मूलखिदिमेदि ॥ २५४ ॥

पचमहाव्रतभ्रष्ट षडावश्यकवर्जित. निरनुतापी ।
उत्सूत्रकारक. तथा स्वच्छद मूलक्षितिमेति ॥

पासत्थादी चउरो तप्पासे जं परे च पव्वइदा ।
ते सव्वे वि य मूलट्ठाण पावंति हु णियत्ता ॥ २५५ ॥

पार्श्वस्थादयश्चत्वार तत्पार्श्वे ये परे च प्रव्रजिता[1] ।
ते सर्वेऽपि च मूलस्थान प्राप्नुवन्ति हि निवृत्ता ॥

तस्सिस्साणं सुद्धी सगणत्थायरियणामगहणेण ।
लोचं काऊण तदो पडिकमणं कुणह ण हु अण्णं ॥ २५६ ॥

तच्छिष्याना शुद्धि स्वगणस्थाचार्यनामग्रहणेन ।
लोच कृत्वा तत. प्रतिक्रमण करोतु न हि अन्यत् ॥

संघाहिवस्स मूलं पत्तस्स वि दिज्जदे ण मूलखिदी ।
उड्डाहपसमणत्थं बहुजणमाधारदाएया ॥ २५७ ॥

सघाधिपते मूल प्राप्तस्य अपि न दीयते मूलक्षितिः ।
उड्डाहप्रशमनार्थ बहुजनमाधारदायका. ॥

जदि आयरिओ छेदं च मूलभूमिं च पत्तओ मरणं ।
तो तस्स जहाजोग्गं छेदो मूलं च दायव्वं ॥ २५८ ॥

---

१ इदं गाथासूत्र ख–ग पुस्तके नास्ति । पूर्वमप्यागतं ५२ पृष्ठे ।

यदि आचार्यः छेदं मूलभूमिं च प्राप्तः मरण ।
तर्हि तस्य यथायोग्यं छेदः मूलं च दातव्य ॥

कालम्मि असंपहुत्ते पत्तो छेदं च मूलभूमिं च
जदि आयरिओ तो से तवसुद्धी चेव दायव्वा ॥ २५९ ॥

कालेऽसम्प्राप्ते प्राप्त. छेद च मूलभूमिं च ।
यदि आचार्य. तर्हि तस्य तपःशुद्धिः चैव दातव्या ॥

दिज्जदि तवो वि संठाणादीछम्मासखमणपेरंतो ।
अवि सत्तमासपेरंतो वा अण्णं ण दायव्वं ॥ २६० ॥

दीयते तपोऽपि सम्थानादिषण्मासक्षमणपर्यन्त ।
अपि सप्तमासपर्यन्त वा अन्यन्न दातव्य ॥

आयरियस्स दु मूलं दिंतो सयमेव मूलभूमी सो ।
पावदि उड्डाहकरो धम्मस्स जसोवहकरो सो ॥ २६१ ॥

आचार्यस्य तु मूलं ददन् स्वयमेव मूलभूमिं सः ।
प्राप्नोति उद्दाहकरः धर्मस्य यशोवधकरः स' ॥

मूलं–इति मूलम ।

मूलखिदी बोलीणो सहसंभोगस्स जो य जोगो दु ।
सो पावदि परिहार पायच्छितं ति बिंति जिणा ॥ २६२ ॥

मूलक्षितिं त्यक्त्वा सहसंभोगस्य यश्च (अ) योग्यस्तु ।
स प्राप्नोति परिहारं प्रायश्चित्तं इति ब्रुवन्ति जिनाः ॥

तं पि अ अणुपट्ठावणपारंचियभेददो हवे दुविहं ।
सगणपरगणविभेदेणिह अणुपट्ठावणं दुविहं ॥ २६३ ॥

तदपि च अनुपस्थापनपारंचिकभेदतः भवेद्द्विविधं ।
स्वगणपरगणविभेदेनेह अनुपस्थापनं द्विविधं ॥

अण्णरिसीणं च दु रिसिं गिहत्थं च अण्णतित्थि वा ।
इत्थि वा तेणिंतो मुणिणो पहणंतओ वि तहा ॥ २६४ ॥

अन्यर्षीणां च तु ऋषिं गृहस्थं च अन्यतीर्थ्यं वा ।
स्त्रीं वा स्तेनयन् मुनीन् प्रहरन्नपि तथा ॥

अण्णे वि एवमादी दोसे सेवंतओ पमादेण ।
पावइ अणुपट्ठवणं णियगणपडिबद्धयं साहू ॥ २६५ ॥

अन्यानपि एवमादिकान् दोषान् सेवमानः प्रमादेन ।
प्राप्नोति अनुपस्थापन निजगणप्रतिबद्धकं साधुः ॥

तत्थ रिसिसमुदायट्ठिदपरिसुत्तादो बहिम्मि बत्तीसं ।
दंडेसु वसदि पिच्छं परंमुहं कुंडियासहियं ॥ २६६ ॥

तत्र ऋषिसमुदायस्थितपरिषत्त बहिः द्वात्रिंशति ।
दंडेषु वसति पिच्छ पराङ्मुख कुडिकासहित ॥

पुरिदो धारिदइचेलयपहुदीणं वंदणं करेदि सयं ।
ते पुण वंदंति ण तं गुरुणमालोचए एक्को ॥ २६७ ॥

पुरत धृताचेलकप्रभृतीना वन्दना करोति स्वय ।
ते पुन. वन्दन्ते न त गुरु आलोचयेदेकम् ॥

बारसवरिसाणेवं मोणवदी पंच पंच उववासे ।
काऊण य पारिंतो गमइ जहण्णेण सो साहू ॥ २६८ ॥

---

१ ऋष्याश्रमादित्यर्थ ।

द्वादशवर्षान् एव मौनव्रती पच पंच उपवासान् ।
कृत्वा च पारयन् गमयति जघन्येन स साधुः ॥

उक्कसेणं छम्मासे उववासिऊण पारिंतो ।
गमइ वरिसाणि बारिस अणुपट्ठवगो गणणिबद्धो ॥ २६९ ॥

उत्कृष्टेन षण्मासान् उपोष्य पारयन् ।
गमयति वर्षाणि द्वादश अनुपस्थापको गणनिबद्धः ॥

सगणो–इति स्वगणानुपस्थानम् ।

परगणअणुपट्ठवगो वि एरिसो चेव किं तु जम्मि गणे ।
उप्पण्णा ते दोसा दप्पादीएहिं पुव्वुत्ता ॥ २७० ॥

परगणानुपस्थापकोऽपि एतादृशश्चैव किन्तु यस्मिन् गणे ।
उत्पन्ना ते दोषा दर्पादिकै पूर्वोक्ताः ।

तेणायरिएण य सो परगणमणुपट्ठविज्जदे साहू ।
तत्थतणाइरियंते आलोचदि सो तदो दोसे ॥ २७१ ॥

तेनाचार्येण च स परगणं अनुपस्थाप्यते साधुः ।
तत्रत्याचार्यान्ते आलोचयति स तत. दोषान् ॥

आलोयणं सुणित्ता पायच्छित्तं ण दितएण पुणो ।
तेण वि आयरिएणं अण्णत्थणुपट्ठविज्जदि जदि सो ॥ २७२ ॥

आलोचन श्रुत्वा प्रायश्चित्त न ददता पुनः ।
तेनापि आचार्येण अन्यत्र अनुस्थाप्यते यतिः सः ॥

तेण वि अण्णत्थेवं तिण्णि य चत्तारिपंचछस्सत्ता ।
आयरियाण समीवे अणुपट्ठाविज्जदे कमसो ॥ २७३ ॥

तेनापि अन्यत्रैव त्रिचतुःपंचषट्सप्ताना ।
आचार्याणा समीपे अनुपस्थाप्यते क्रमशः ॥

पच्छिमगणिणा वि पुणो पुव्वुत्तालोचिदायरियपासं ।
अणुपट्ठविदो संतो णियंत्तिदूणेदि तप्पासं ॥ २७४ ॥

पश्चिमगणिनापि पुनः पूर्वोक्तालोचिताचार्यपार्श्वं ।
अनुपस्थापितः सन् निवृत्त्यैति तत्पार्श्वं ॥

सो वि जहण्ण मज्झिममुक्कस्सं वा पुरोदिदं छेदं ।
दाउं तस्सायरिओ चरावए पुव्वविधिणेव ॥ २७५ ॥

सोऽपि जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वा पुरोदित छेद ।
दत्वा तस्मै आचार्यः चारयति पूर्वविधिनैव ॥

परगण—इति परगणानुपस्थानम् ।

तित्थयरगणधराण आयरियाण महड्ढिपत्ताणं ।
संघस्स पवयणस्स य आसादणकारओ पावो ॥ २७६ ॥

तीर्थकरगणधराणा आचार्याणा महर्द्धिप्राप्ताना ।
सघस्य प्रवचनस्य च आसादनाकारक पाप ॥

रायापराधकारी रायामच्चाण तह य वंदणो ।
रायग्गमहिसिपडिसेवगो य धम्मद्दुहो तह य ॥ २७७ ॥

राजापराधकारी राजामात्यान् तथा च वन्दमानः ।
राजाग्रमहिषीप्रतिसेवकश्च धर्मध्रुक् तथा च ॥

जो एवंविहदोसो चाउव्वण्णस्स सवणसंघस्स ।
मज्झम्मि पंचतालं दाऊणं सो संघहबाहिरओ ॥ २७८ ॥

य एवंविधदोषः चातुर्वर्ण्यस्य श्रमणसंघस्य ।
मध्ये पचतालं दत्वा स संघबाह्यः ॥

एसो अवंदणिज्जो पंचमहापादगोत्ति घोसित्ता ।
पायच्छित्तं दाउं सदेसदो घाडिदो संतो ॥ २७९ ॥

एष अवन्दनीय पंचमहापातकीति घोषयित्वा ।
प्रायश्चित्त दत्वा स्वदेशतो घाटित सन् ॥

गंतूण अण्णदेसे जत्थ य धम्मं ण याणए लोओ ।
तत्थत्थिऊण पायच्छित्तं आचरउ गणिदिण्णं ॥ २८० ॥

गत्वा अन्यदेशे यत्र च धर्म न जानाति लोक ।
तत्र स्थित्वा प्रायश्चित्त आचरतु गणिदत्तम् ॥

तं पुण सपरगणट्ठियअणुपट्ठवगस्स जारिसं दिण्णं ।
तारिसमेवेदस्स वि जहण्णमुक्कस्समिदरं वा ॥ २८१ ॥

तत्पुन स्वपरगणस्थितानुपस्थापकस्य यादृश दत्त ।
तादृशमेवैतस्यापि जघन्य उत्कृष्ट इतरद्वा ॥

पारं अंचदि परदेसमेदि गच्छदि जदो तदो एसो ।
पारंचिगोत्ति भण्णदि पायच्छित्तं जिणमदम्मि ॥ २८२ ॥

पार अचति परदेशमेति गच्छति यतस्ततः एष ।
पारञ्चिक इति भण्यते प्रायश्चित जिनमते ॥

एवं पायच्छित्तं कप्पव्ववहारभासियं भणियं ।
जीदे विस एव विधी णवरि सतवोमासिगाविच्छगुरुमासा २८३

एवं प्रायश्चित्त कल्पव्यवहारभाषितं भणितं ।
जीते अपि स एव विधिः नवरि सतपःमासिकादिषड्गुरुमासाः ॥

आदितिगसंघडणो भवभीरू जिदपरीसहो धीरो ।
गीदत्थो दढधम्मो चरेदि पारंचिगं भिक्खू ॥ २८४ ॥

आदिमत्रिसंहनन. भवभीरुः जितपरीषहः धीर. ।
गीतार्थः दृढधर्मा चरति पारञ्चिक भिक्षुः ॥

पारंचिग-इति पारंचिकं ।

परिणामपच्चएणं सम्मत्तं उज्झिऊण मिच्छत्तं ।
पडिवज्जिऊण पुणरवि परिणामवसेण सो जीवो ॥ २८५ ॥

परिणामप्रत्ययेन सम्यक्त्व उज्झित्वा मिथ्यात्व ।
प्रतिपद्य पुनरपि परिणामवशेन स जीवः

णिंदणगरहणजुत्तो णियत्तिऊणो पडिविज्ज सम्मत्तं ।
जं त पायच्छित्त सद्दहणासण्णिद होदि ॥ २८६ ॥

निन्दनगर्हणयुक्तः निर्वर्त्य पतिपद्यते सम्यक्त्व ।
यत्तत्प्रायश्चित्त श्रद्धानसंज्ञित भवति ॥

जदि पुण विराहिऊण धम्म मिच्छत्तमुवगमो होदि ।
तो तस्स मूलभूमी दायव्वा लोयविदिदस्स ॥ २८७ ॥

यदि पुन विराध्य धर्म मिथ्यात्वमुपगमो भवति ।
तर्हि तस्य मूलभूमिः दातव्या लोकविदितस्य ॥

सद्दहणा—इति श्रद्धानम् ।

एवं दसविधपायच्छित्त भणियं तु कप्पववहारे ।
जीदम्मि पुरिसभेद णाउं दायव्वमिदि भणियं ॥ २८८ ॥

एवं दशविधप्रायश्चित्तं भणितं तु कल्पव्यवहारे ।
जीते पुरुषभेद ज्ञात्वा दातव्यमिति भणितं ॥

रिसिपायच्छित्तं–इति ऋषिप्रायश्चित्तं समाप्तम् ।

जं समणाणं वुत्तं पायच्छित्तं तह ज्जमाचरण
तेसिं चेव पउत्त तं समणीणपि णायव्व ॥ २८९ ॥

यत् श्रमणानामुक्त प्रायश्चित्तं तथा यत् आचरणम् ।
तेषा चैव प्रोक्तं तत् श्रमणीनामपि ज्ञातव्यम् ॥

णवरि परियायछेदो मूलट्ठाणं तहेव परिहारो ।
दिणपडिमा वि य तीसं तियालजोगो य णेवत्थि ॥ २ ॥

नवरि पर्यायच्छेदो मूलस्थानं तथैव परिहारः ।
दिनप्रतिमापि च तासा त्रिकालयोगश्च नैवास्ति ॥

थिरअथिराणज्जाणं पमाददप्पेहिं एगबहुवारं ।
सामाचारविचारे पायच्छित्तं इमं भणियं ॥ २९१ ॥

स्थिरास्थिराणामार्याणा प्रमाददर्पाभ्यां एकबहुवारम् ।
सामाचारातिचारे प्रायश्चित्तं इदं भणितम् ॥

काउस्सग्गो खमणं खमणं पणगं च पणग छट्ठं च ।
छट्ठं तहेव मासिममेवमिसीणं पि दायव्वं ॥ २९२ ॥

कायोत्सर्गः क्षमणं क्षमणं पंचक च पंचकं षष्ठं च ।
षष्ठं तथैव मासिकमेव ऋषीणामपि दातव्यम् ॥

एकस्स वत्थजुयलस्सेकस्स गोणिया एक्ककंथाए ।
पासुगजलेण पक्खालणम्मि एक्को विउस्सग्गो ॥ २९३ ॥

एकस्य वस्त्रयुगलस्य एकस्या गौणिकायाः एककथायाः ।
प्रासुकजलेन प्रक्षालने एको व्युत्सर्गः ॥

अप्पासुगजलपक्खालणम्मि एगो हवेइ उववासो ।
पत्तादीणं पक्खालणे वि णादूण दायव्वं ॥ २९४ ॥

अप्रासुकजलप्रक्षालने एको भवति उपवासः ।
पात्रादीनां प्रक्षालनेऽपि ज्ञात्वा दातव्यम् ॥

पहरेणेक्केणखया भिपिजती जलेण पहरेणं ।
अवरेगेणतिम्मे इमट्टिया जा जिणायदणे ॥ २९५ ॥

।

॥

लावाविज्जइ जइ सा कुड्डादीएसु इट्टयाणं वा ।
वेण्णिसहस्सा तो से छट्ठाइं वेण्णि पडिकमण ॥ २९६ ॥

लागयति यदि सा कुड्यादिकेषु इष्टकान् वा ।
द्विसहस्राणि षष्ठानि द्वे प्रतिक्रमणे ॥

एव मट्टियजलपरिमाण णादूण थावमिदरं वा
अण्णत्थ वि दायव्व पायच्छित्तं जहाजोग्ग ॥ २९७ ॥

एवं मृत्तिकाजलपरिमाण ज्ञात्वा स्तोक इतरद्वा ।
अन्यत्रापि दातव्य प्रायश्चित्त यथायोग्यम् ॥

पुप्फवदी जदि विरदी जायदि तो कुणउ तिण्णि दिवसाणि ।
आयंविलणिव्वियडीखमणाण एक्कदरगं तु ॥ २९८ ॥

---

१ खमण च एगठाणं वा पाठान्तर ख–ग–पुस्तके ।

पुष्पवती यदि विरती जायते ततः करोतु त्रीणि दिवसानि ।
आचाम्लनिर्विकृतीक्षमणाना एकतरक तु ॥

सज्झायदेववंदणणियमादियाओ सव्वकिरियाओ ।
मोणेण कुणउ तिण्णि वि दिणाणि तो तुरियदिवसम्मि॥२९९॥

स्वाध्यायदेववदननियमादिकाः सर्वक्रियाः ।
मौनेन करोतु त्रीण्यपि दिनानि ततः तुरीयदिवसे ॥

पच्छण्णए पएसे पासुगसलिलेण एगकलसेण ।
पक्खालिदूण गत्त गुरुमूले गिण्हदु वदाइं ॥ ३०० ॥

प्रच्छन्ने प्रदेशे प्रासुकसलिलेन एककलशेन ।
प्रक्षाल्य गात्र गुरुमूले गृह्णातु व्रतानि ॥

जदि पुण चंडालादी छिविज्ज विरदी कहिं पि विरदो वा ।
तो जलण्हाण किच्चा उववासं तद्दिणे कुणउ ॥ ३०१ ॥

यदि पुनः चाडालादीन् स्पृशेत् विरती कथमपि विरतो वा ।
तर्हि जलस्नान कृत्वा उपवास तद्दिने करोतु ॥

जलवदमतेहि हवे ण्हाण तिविहं तु तत्थ जलण्हाणं ।
गिहिणो विरदाण पुण वदमतेहिं पुणो कहियं ॥ ३०२ ॥

जलव्रतमत्रैः भवेत् स्नान त्रिविध तु तत्र जलस्नानम् ।
गृहिणो विरताना पुनः व्रतमत्राभ्या पुनः कथितम् ॥

समणीण सम्मत्त—इति श्रमणीनां समाप्तम् ।

---

१ अज्जाण पायच्छित्तं ख-ग—पुस्तके ।

दोण्हं तिण्हं छण्हं मुवरिमुक्कस्समज्झिमिदिराणं ।
देसजदीणं छेदो विरदाणं अद्धद्धपरिमाणं ॥ ३०३ ॥

द्वयोः त्रयाणा षण्णा उपरि उत्कृष्टयोः मध्यमानामितरेषां ।
देशयतीनां छेदः विरतानां अर्धार्धपरिमाण ॥

विरदाणमुत्तमलहरणस्स दुभागो तइज्जओ भागो ।
भागो चउत्थओ वि य तेसिं छेदो त्ति वेंति परे ॥ ३०४ ॥[1]

विरतानामुक्तमलहरणस्य द्विभागः तृतीयो भागः ।
भागश्चतुर्थोऽपि च तेषा छेदः इति ब्रुवन्ति परे ॥

संजदपायच्छित्तस्सद्धादिकमेण देसविरदाणं ।
पायच्छित्तं होदित्ति जदि वि सामण्णदो वुत्तं ॥ ३०५ ॥

संयतप्रायश्चित्तस्य अर्धादिक्रमेण देशविरताना ।
प्रायश्चित्त भवतीति यद्यपि सामान्यतः उक्त ॥

तो वि महापातकदोससंभवे छण्हमवि जहण्णाणं ।
देसविरदाणमण्णं मलहरणं अत्थि जिणभणिदं ॥ ३०६ ॥

तथापि महापातकदोषसंभवे षण्णामपि जघन्याना ।
देशविरताना अन्यन्मलहरणमस्ति जिनभणितं ॥

छट्ठ अणुव्वयघादे गुणवयसिक्खावयं तु उववासो ।
दंसणचारविचारे जिणपूजं होदि णिद्दिट्टं ॥ ३०७ ॥

षष्ठमणुव्रतघाते गुणव्रतशिक्षाव्रतस्य तु उपवासः ।
दर्शनाचारातिचारे जिनपूजा भवति निर्दिष्टा ॥

---

[1] गाथेयं ख—ग—पुस्तके नास्ति ।

गोइत्थिवालमाणुसबंभणपरलिंगिआदसम्माणं ।
सजहण्णमज्झिमेदरदेसविरदाण मलहरणं ॥ ३०८ ॥

गोस्त्रीबालमानुषब्राह्मणपरलिंग्यात्मसमाना ।
सजघन्यमध्यमेतरदेशविरताना मलहरण ॥

पण सत्त णवय बारस पण्णारस अट्ठारस्स बावीसा ।
छव्वीस तीस पणइ होंति कमे गोबालपमुहेहिं विंति परे॥३०९॥

पंच सप्त नव द्वादश पंचदश अष्टादश द्वाविंशतिः ।
षड्त्रिंशत्रिंशत्पंचत्रिंशत् भवन्ति क्रमेण गोबालप्रमुखैः ब्रुवन्ति परे ॥

घादे एक्कावीसं उववासा दुगुणदुगुणकमसहिया ।
अंतादिछट्ठसहिया पायच्छित्तं गिहत्थाण ॥ ३१० ॥

घाते एकविंशतिः द्विगुणद्विगुणक्रमसहिताः ।
अन्तादिषष्ठसहिताः प्रायश्चित्त गृहस्थानाम् ॥

सयलं पि इमं भणियं महाबलाणं पुराणपुरिसाणं ।
सपइकालेत्थ गुरुमासेहिंतो परं णत्थि ॥ ३११ ॥

सकलमपि इद भणित महाबलाना पुराणपुरुषाणा ।
संप्रतिकालेऽत्र गुरुमासात् पर नास्ति ॥

एवं पायच्छित्तं चराविऊणं जिणालए अरण्णे वा ।
तो पच्छा आयरिओ लोयस्स वि चित्तगहणत्थं ॥ ३१२ ॥

एतत्प्रायश्चित्त चारयित्वा जिनालयेऽरण्ये वा ।
ततः पश्चादाचार्यः लोकस्यापि चित्तग्रहणार्थं ॥

जिणभवणंगणदेसे गोमयगोमुत्तदुद्धदहिएहिं ।
घयसहिएहिं कराविय सत्तमहामंडलाइं फुडं ॥ ३१३ ॥

जिनभवनाङ्गणदेशे गोमयगोमूत्रदुग्धदधिभिः ।
घृतसहितैः कारापयित्वा सप्तमहामण्डलानि स्फुट ॥

तो तं मुंडियसीसं वइसारिय मंडलेसु छसु कमसो ।
जलपंचदव्वघयदहिपयगंधजलाहि पुण्णेहिं ॥ ३१४ ॥

ततः त मुडितशीर्षं वेशयित्वा मडलेषु षट्सु क्रमशः ।
जलपचद्रव्यघृतदधिपयोगन्धजलैः पूर्णै. ॥

वरवारएहिं समं अहिसिंचिय संघसंतिघोसेण ।
पच्छा सत्तममंडलठियस्स से सघसमवाओ ॥ ३१५ ॥

वरवारिभि. सम अभिषिच्य सघशान्तिघोषेण ।
पश्चात् सप्तमण्डलस्थितस्य तस्य सघसमवाय ॥

जलपुप्फक्खयसेसादाणेहिं परममंगलासीहि ।
अहिणंदियंगसोहिं देउ फुड जिणवयसमेओ ॥ ३१६ ॥

जलपुष्पाक्षतशेषादानै परममगलाशीर्भिः ।
अभिनदिताङ्गशुद्धिं ददातु स्फुट जिनव्रतसमेता ॥

तो णियभवणपइट्ठो जिणमहिमं सघभोयणं कुणऊ ।
लोयाण चित्तगहणं च वत्थधणभोयणादीहिं ॥ ३१७ ॥

ततः निजभवनप्रविष्ट जिनमहिमा सघभोजन करोतु ;
लोकाना चित्तग्रहण च वस्त्रधनभोजनादिभिः ॥

पाओ लोओ चित्तं तस्स मणोचित्तगाहयं कम्मं ।
लोयस्स जं तमेव हि पायच्छित्तं ति जिणवुत्तं ॥ ३१८ ॥

प्रायो लोको चित्त तस्य मन चित्तग्राहक कर्म ।
लोकस्य यत्तदेव हि प्रायश्चित्तमिति जिनोक्तम् ॥

तेणिह सव्वपयारेण जणमणोवज्जणं गिहत्थेण ॥
काऊण दोससुद्धी अणुट्ठियव्वा पयत्तेण ॥ ३१९ ॥

तेनेह सर्वप्रकारेण जनमनोवर्जनं गृहस्थेन ।
कृत्वा दोषशुद्धिं अनुष्ठातव्या प्रयत्नेन ॥

उरपरिसप्पादीणं घादे जादम्मि तिण्णि उववासा ।
णिद्दिट्ठा गिहिवग्गस्स छेदववहारकुसलेहिं ॥ ३२० ॥

उरःपरिसर्पादीनां घाते जाते त्रय उपवासाः ।
निर्दिष्टा गृहिवर्गस्य च्छेदव्यवहारकुशलैः ॥

वियलिंदियाण घादे काउस्सग्गा तदिंदियपमाणा ।
इह पुण काउस्सग्गो अट्ठसयउस्सासपरिमाणो ॥ ३२१ ॥

विकलेन्द्रियाणां घाते कायोत्सर्गाः तदिन्द्रियप्रमाणाः ।
इह पुनः कायोत्सर्गः अष्टशतोच्छ्वासपरिमाणः ।

विरदाणं पि महव्वयकयादिचारस्स एद्दहो चेव ।
काउस्सग्गो अण्णत्थ पुव्वभणिदो त्ति विंति परे ॥ ३२२ ॥

विरतानामपि महाव्रतकृतातिचारणा एतावानेव ।
कायोत्सर्गः अन्यत्र पूर्वभणित इति ब्रुवन्ति परे ॥

अण्णा वि अत्थि अणुगुणसिक्खावयदंसणादिचाराणं ।
गिहिणो सोही य तं पि य सखेवेण पवक्खामि ॥ ३२३ ॥

अन्यापि अस्ति अणुगुणशिक्षाव्रतदर्शनातिचाराणां ।
गृहिणः शुद्धिश्च तामपि च संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि ॥

पंचतिचउव्विहाइं अणुगुणसिक्खावयाइं होंति तहिं ।
एक्केके अदिचारा पंचेव अदिक्कमादीया ॥ ३२४ ॥

पंचत्रिचतुर्विधानि अणुगुणशिक्षाव्रतानि भवन्ति तत्र ।
एकैकस्मिन् अतिचाराः पञ्चैव अतिक्रमादयः ॥

पढमो तेसु अदिक्कमदोसो बीओ वदिक्कमो णाम ।
अइचार अणाचारो पंचमदोसो अणाभोगो ॥ ३२५ ॥

प्रथमः तेषु अतिक्रमदोषः द्वितीयः व्यतिक्रमो नाम ।
अतिचारोऽनाचरः पञ्चमदोषोऽनाभोगः ॥

मणसुद्धिहाणिवयभंगिच्छाकरणालसत्तवयभंगा ।
पच्चावेक्खणविरहो अदिक्कमादीण पज्जाया ॥ ३२६ ॥

मनःशुद्धिहानि-व्रतभंगेच्छा-करणालसत्व-व्रतभगाः ।
प्रत्यावेक्षणाविरहः अतिक्रमादीनां पर्यायाः ॥

संका कंखा य तहा विदिगिंच्छा अण्णदंसणपसंसा ।
पंच मला सम्मत्ते होंति अणायदणसेवा य ॥ ३२७ ॥

शंका कांक्षा च तथा विचिकित्सा अन्यदर्शनप्रशंसा ।
पंच मलाः सम्यक्त्वे भवन्ति अनायतनसेवा च ॥

इय पंचसट्ठिदोसाण सोहणं तस्स अथिरथिरभावं ।
अगुणित्तं च गुणित्तं दव्वे खेत्तम्मि पविभाग ॥ ३२८ ॥

इति पञ्चषष्ठिदोषाणां शोधनं तस्य अस्थिरस्थिरभावं
अगुणित्वं च गुणित्वं द्रव्ये क्षेत्रे प्रविभागं ॥

वयसुहासुहपरिणामतिव्वमंदत्तणं च सत्तं च ।
सपरमणकरणमारिदजीवसरूवं च णाऊणं ॥ ३२९ ॥

वयःशुभाशुभपरिणामतीव्रमन्दत्वं च सत्वं च ।
स्वपरमनःकरणमारितजीवस्वरूपं च ज्ञात्वा ॥

काउस्सग्गो दाणं जिणपूया एयभत्तमिगठाणं ।
णिव्वियड्डी पुरिमंडलमुववासो वा तिरत्तं वा ॥ ३३० ॥

कायोत्सर्गः दानं जिनपूजा एकभक्तमेकस्थानं ।
निर्विकृतिः पुरिमण्डल उपवासो वा त्रिरात्रं वा ॥

पणयं च भिण्णमासो लहुमासो वा तहेव गुरुमासो ।
इच्चादि देउ गणी पायाच्छित्तं जहाजोग्गं ॥ ३३१ ॥

पणकं च भिन्नमासं लघुमासं वा तथैव गुरुमासं ।
इत्यादिकं ददातु गणी प्रायश्चित्तं यथायोग्यम् ॥

महु मज्जं मंसं वा दप्पपमादेहिं सेवदि कहिं पि ।
देसवदी जदि तदो बारस खमणाणि छट्ठदुगं ॥ ३३२ ॥

मधु मद्यं मांसं वा दर्पप्रमादाभ्यां सेवते कथमपि ।
देशव्रती यदि तदा द्वादश क्षमणानि षष्ठद्विकं ॥

पंचुंबरादि खायदि देसवदी जदि पमाददप्पेहिं ।
तो तस्स हवदि छेदो वे उववासा तिरत्तदुगं ॥ ३३३ ॥

पंचोदुम्बरादीन् भक्षयति देशव्रती यदि प्रमाददर्पाभ्यां ।
तर्हि तस्य भवति च्छेदः द्वौ उपवासौ त्रिरात्रद्विकम् ॥

सुक्कं मुत्तपुरीसं पमाददप्पेहिं खायदि कहिं पि ।
देसविरदो तदो सो वे उववासा तिरत्तं च ॥ ३३४ ॥

शुष्कं मूत्रपुरीषं प्रमाददर्पाभ्यां भक्षयति कथमपि ।
देशविरतस्तदा स द्वौ उपवासौ त्रिरात्रं च ॥

बड्डुम्मि अंतराए मुहम्मि दिट्ठम्मि भायणे य तहा।
णिसुयम्मि होइ सुद्धी दोण्णि विवेङ्गखमणाइं ॥ ३३५ ॥

बृहति अन्तराये मुखे दृष्टे भाजने च तथा।
निश्रुते भवति शुद्धि द्वे द्व्यर्धैकक्षमणनि ॥

कावालिय अण्णपाणे भुत्ते तण्णारिसेवणे य तहा।
साभोगे छट्ठतियं णाभोगे एगकल्लाणं ॥ ४३६ ॥

कापालिकम्यान्नपाने भुक्ते तन्नारीसेवने च तथा।
साभोगे षष्ठत्रिक अनाभोगे एककल्याण ॥

गोसिंगघादवंदीगिहरोधोलंवणादिमदएसु।
छेत्तेसु तह य देहम्वणंमि किमिएसु पडिएसु ॥ ३३७ ॥

गोसिंगघातवन्दिगृहरोधालम्बनादिमृतेषु।
क्षेत्रेषु तथा च देहे कृमिषु पतितेषु ॥

कारुगगिहण्णपाणंगणासु भुत्तासु छच्चउत्थाइं।
कारुगपत्तेसु पुणो भुत्ते पंचेव उववासा ॥ ३३८ ॥

कारुकगृहान्नपानाङ्गनासु भुक्तासु षट्चतुर्थानि।
कारुकपात्रेषु पुन भुक्ते पञ्चैव उपवासा ॥

चंडालअण्णपाणे भुत्ते सोलस हवंति उववासा।
चंडालाण पत्ते भुत्ते अट्ठेव उववासा ॥ ३३९ ॥

चण्डालान्नपाने भुक्ते षोडश भवन्ति उपवासा.।
चण्डालाना पात्रे भुक्ते अष्टैव उपवासाः ॥

चंडालादिसुउण्णहि मएसु तस्संकरे पमत्तेण ।
मासिगमेयं देयं पायच्छित्तं गिहत्थाणं ॥ ३४० ॥

चण्डालादि स्वजनैः ? मृतेषु तत्संकरे प्रमादेन ।
मासिकमेकं देय प्रायश्चित्त गृहस्थानाम् ॥

मादुसुदादीहि सजोणियाहि चंडालइत्थियाहि समं ।
अब्बमं पुण सेवंते हवंति बत्तीस उववासा ॥ ३४१ ॥

मातासुतादिभिः स्वयोनिभि चांडालस्त्रीभिः मम ।
अब्रह्म पुन· सेवमाने भवन्ति द्वात्रिंशदुपवासा ॥

छट्ठमणुव्वदघादे गुणवयसिक्खावएहि उववासो ।
दंसणअइचारे पुण जिणपूया होइ णिद्दिट्ठ ॥ ३४२ ॥

षष्ठ अणुव्रतघाते गुणव्रतशिक्षाव्रताभ्या उपवास. ।
दर्शनातिचारे पुनः जिनपूजा भवति निर्दिष्टा ॥

पुप्फवदी पुप्फवदीए सजादीए जदि छिवंति अण्णोण्णं ।
दोण्हाणम्मि विसोही ण्हाणं खवण च गंधुदयं ॥ ३४३ ॥

पुष्पवती पुष्पवत्या सजात्या यदि स्पृशति अन्योन्यं ।
द्वयोरपि विशुद्धि· स्नान क्षमणं च गन्धोदकम् ॥

बंभणखत्तियमहिला रजस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं ।
तो पढमद्धकिरिच्छं पादकिरिच्छं परा चरइ ॥ ३४४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियमहिला रजस्वला स्पृशन्ति अन्योन्यं ।
तर्हि प्रथमा अर्धकिरिच्छं पादकिरिच्छ परा चरति ॥

तिविहाहारविवज्जणलक्खणखमणं दिणंतभुत्ती य ।
एकट्ठाणं आयंबिलं च एदं किरिच्छमिह ॥ ३४५ ॥

त्रिविधाहारविवर्जनलक्षण क्षमण दिनान्तभुक्तिश्च ।
एकस्थानं आचाम्ल च एतत् किरिच्छमिह ॥

बंभणवणिमहिलाओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं ।
तो पादूणं पढमा पादकिरिच्छं परा चरइ ॥ ३४६ ॥

ब्राह्मणवणिग्महिला रजस्वलाः स्पृशन्ति अन्योन्यं ।
तर्हि पादोन प्रथमा पादकिरिच्छं परा चरति ॥

बंभणसुद्दित्थीओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोणं ।
पढमा सव्वकिरिच्छ चरेइ इदरा च दाणादि ॥ ३४७ ॥

ब्राह्मणशूद्रस्त्रिय रजस्वलाः स्पृशन्ति अन्योन्य ।
प्रथमा सर्वकिरिच्छ चरति इतरा च दानादि ॥

खत्तियवणिमहिलाओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्ण ।
तो पढमद्धकिरिच्छ पादकिरिच्छ परा चरइ ॥ ३४८ ॥

क्षत्रियवणिग्महिला रजस्वला: स्पृशन्ति अन्योन्यं ।
तर्हि प्रथमा अर्धकिरिच्छ पादकिरिच्छ परा चरति ॥

खत्तियसुद्दित्थीओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोणं ।
तो पादूणं पढमा पादकिरिच्छ परा चरइ ॥ ३४९ ॥

क्षत्रियशूद्रस्त्रियः रजस्वला स्पृशंति अन्योन्य ।
तर्हि पादोनं प्रथमा पादकिरिच्छ परा चरति ॥

वाणियसुद्दित्थीओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं ।
तो खवणतिगं पढमा चरइ परा खमणमेगं तु । ३५० ॥

वणिक्शूद्रस्त्रियः रजस्वलाः स्पृशन्ति यदि अन्योन्यं ।
तर्हि क्षमणत्रिकं प्रथमा चरति परा क्षमणमेकं तु ॥

पुप्फवदी जदि णारी छिप्पइ जइ चंडालमंडालादीहिं ।
तो ण्हाणदिणत्ति णिराहारा ण्हाऊण सुज्झिज्जा ॥ ३५१ ॥

पुष्पवती यदि नारी स्पृशति यदि चण्डालमण्डलादिभिः ।
तर्हि स्नानदिनमिति निराहारा स्नात्वा शुद्ध्यति ॥

खत्तियबंभणवइसासुद्दा वि य सूतगम्मि जायम्मि ।
पणं दस बारस पण्णरसेहि दिवसेहिं सुज्झंति ॥ ३५२ ॥

क्षत्रियब्राह्मणवैश्याः शुद्रा अपि च सूतके जाते ।
पंचदशद्वादशपंचदशभिः दिवसैः शुद्ध्यन्ति ॥

बालत्तणसूरत्तणजलणादिपवेसदिक्खंतेहिं ।
अणसणपरदेसेसु य मुदाण खलु सूतगं णत्थि ॥ ३५३ ॥

बालत्वशूरत्वज्वलनादिप्रवेशादीक्षितैः ।
अनशनपरदेशेषु च मृतानां खलु सूतकं नास्ति ॥

जावदिआ अविसुद्धा परिणामा तेत्तिया अदीचारा ।
को ताण पायच्छित्त दाउं काउं च सक्केज्जो ॥ ३५४ ॥

यावन्तोऽविशुद्धाः परिणामाः तावन्तोऽतिचाराः ।
कस्तेषां प्रायश्चित्तं दातुं कर्तुं च शक्नुयात् ॥

---

१ बारस दस तह पण्णरस तिसदि दिवसेहिं सुज्झंति पाठान्तरं ।

तह्मा थूलविचाराणेदं मलसोहणं समुद्दिट्ठं ।
सुहमविचाराणां पुण णियत्तणं चेव मलहरणं ॥ ३५५ ॥

तस्मात् स्थूलातिचाराणामिदं मलशोधनं समुद्दिष्टं ।
सूक्ष्मातिचाराणां पुनः निर्वर्तनं नैव मलहरणं ॥

एवं पायच्छित्तं बहुआयरिओवदेसमवगम्मं ।
जीदादिगाइं सत्थाइं सम्ममवधारिऊणं च ॥ ३५६ ॥

एतत्प्रायश्चित्तं बह्वाचार्योपदेशमवगम्य ।
जीतादिकानि शास्त्राणि सम्यगवधार्य च ॥

अणुकंपाकहणेण य विरामवयगहणं सह तिसुद्धीए ।
पादद्धतयं सव्वं णासइ पावं ण संदेहो ॥ ३५७ ॥

अनुकम्पाकथनेन च विरामव्रतग्रहणं सह त्रिशुद्ध्या ।
पादार्धत्रयं सर्वं नाशयति पापं न सन्देहः ॥

चाउव्वणपराधविसुद्धिणिमित्तं मए समुद्दिट्ठं ।
णामेण छेदपिंडं साहुजणो आयरं कुणउ ॥ ३५८ ॥

चातुर्वर्ण्यापराधविशुद्धिनिमित्तं मया समुद्दिष्टं ।
नाम्ना छेदपिण्डं साधुजनः आदरं करोतु ॥

परमट्ठसुद्धिववहारसुद्धिभेदेसु जं विरुद्धत्थं ।
लिहिदमिहऽणाणत्तेण तं वि सोहंतु छेदण्हू ॥ ३५९ ॥

परमार्थशुद्धिव्यवहारशुद्धिभेदेषु यत् विरुद्धार्थं ।
लिखितमिह अज्ञानत्वेन तदपि शोधयन्तु छेदज्ञाः ॥

चउरसयाइ वीसुत्तराइं गंथस्स परिमाणं ।
तेत्तीसुत्तरतिसयपमाणं गाहाणिबद्धस्स ॥ ३६० ॥

चतुःशतानि विंशत्युत्तराणि ग्रन्थस्य परिमाणं ।
त्रयस्त्रिंशदुत्तरत्रिशत प्रमाण गाथानिबद्धस्य ॥

भावेइ छेदपिंडं जो एदं इंदणंदिगणिरचिदं ।
लोइयलोउत्तरिए ववहारे होइ सो कुसलो ॥ ३६१ ॥

भावयति च्छेदपिंड य एतदिन्द्रनन्दिगणिरचित ।
लौकिकलोकत्तरे व्यवहार भवति स कुशलः ॥

इय इंदणंदिजोइंदविरइयं सज्जणाण मलहरणं ।
लिहियं तं भत्तीए सम्मत्तपसत्तचित्तेण ॥ १ ॥

इति इन्द्रनन्दियोगींद्रविरचित सज्जनाना मलहरणं ।
लिखित तत् भक्त्या सम्यक्त्वप्रसन्नचित्तेन ॥

इति प्रायश्चित्तग्रन्थः समाप्तः ।

छेदशास्त्रम् ।

छेदनवत्यपरनाम

वृत्तिसहितम् ।

णमिऊण य पंचगुरु गणहरदेवाण रिद्धिवंताणं ।
वुच्छामि छेदसत्थ साहूणं सोहणट्ठाणं ॥ १ ॥

नत्वा च पञ्चगुरून् गणधरदेवान् ऋद्धिवतः ।
वक्ष्यामि छेदशास्त्र साधूना शोधनस्थानम् ॥

पायच्छित्तं सोही मलहरणं पावणासण छेदो ।
पज्जाया मूलगुण मासिय संठाण पचकल्लाणं ॥ २ ॥

प्रायश्चित्त शुद्धिः मलहरण पापनाशन छेदः ।
पर्यायाः मूलगुण मासिक सस्थान पञ्चकल्याण ॥

आयंविल णिव्वियडी पुरिमड्ढलमेयठाण खमणाणि ।
एयं खलु कल्लाण पचगुण जाण मूलगुणं ॥ ३ ॥

आचाम्ल निर्विकृतिः पुरिमण्डलं एकस्थान क्षमणानि ।
एकं खलु कल्याण पञ्चगुण जानीहि मूलगुण ॥

आदीदो चउमज्झे एक्कट्ठवणियम्मि लहुमासं ।
छम्मासे संठाणं ठाण छम्मासिय जाण ॥ ४ ॥

---

१ एतानि प्रायश्चित्तादीनि पञ्च प्रायश्चित्तस्य नामानि । २ व्रतसमित्याद्यष्टाविंशतिः मद्यमांसमधुत्यागाद्यष्टौ वा । ३ वस्तुसख्या । ४ एकभक्त । ५ कल्याणमेक । ६ पंच-कल्याणकैर्मूलगुणमेक । ७ मूलगुणस्थानाच्चतुर्थस्थानके कल्याणकनामाचरणस्य संख्या त्रिधा ।

आदितः चतुर्मध्ये एकतरापनीते लघुमास ।
षण्मासे संस्थानं स्थानं षण्मासिकं जानीहि ॥

आयंबिलम्मि पादूण खवणपुरिमंडले तहा पादो ।
एयट्ठाणे अद्धं णिव्वियडीए वि एमेव ॥ ५ ॥

आचाम्ले पादोनं क्षमणपुरिमंडलयोः तथा पाद ।
एकस्थानेऽर्धं निर्विकृतावपि एवमेव ॥

मूलगुण भविय एकोऽर्थ । मासिय संठाण पचकल्लाणं इत्येकोऽर्थः ॥

एक्कम्मि विउसग्गे णव णवकारा हवंति बारसहिं ।
सयमट्ठोत्तरमेदे हवंति उववासा य (ज) स्स फलं ॥ ६ ॥

एकस्मिन् व्युत्सर्गे नव नमस्कारा भवन्ति द्वादशे ।
शतमष्टोत्तर एते भवन्ति उपवासा यस्य फलम् ॥

अस्या अर्थः—कायोत्सर्गैकस्य नमस्कारा नव भवन्ति । कायोत्सर्गैर्द्वादशैरष्टोत्तरशत भवन्ति । तेनाष्टोत्तरशतेनोपवासमेक लभ्येत ॥

मूलगुणा वि य दुविहा सवणाणं तह य सावयाणं च ।
उत्तरगुणा तहेव य तेसिं सोहिं पवक्खामि ॥ ७ ॥

मूलगुणा अपि च द्विविधाः श्रमणाना तथा च श्रावकाणा च ।
उत्तरगुणाः तथैव च तेषा शुद्धिं प्रवक्ष्ये ॥

एइंदियादि कादुं इंदियगणणाइ जाम चउरिंदी ।
काउस्सग्गा य तहा बारसछच्चउत्तिहि खमणं ॥ ८ ॥

एकेन्द्रियादिं कृत्वा इन्द्रियगणनया यावत् चतुरिन्द्रियान् ।
कायोत्सर्गाश्च तथा द्वादशषट्चतुस्त्रिभिः क्षमणं ॥

अस्या अर्थः—एइंदियकायोत्सर्गं (१) बेइंदियकायोत्सर्गं (२) ते इंदियकायोत्सर्गं (३) चउरिंदियकायोत्सर्गं (४)। "बारस छच्चउतिहिं खमणं" अस्यार्थः—एकेन्द्रियाणां १२ (द्वादशानां घाते) उपवासमेकं । द्वीन्द्रियाणां ६ (षण्णां घाते) उपवासमेकं । त्रीन्द्रियाणां ४ (चतुर्णां) उपवासमेकं । चतुरिन्द्रियाणां ३ (त्रयाणां) उपवासमेकं ।

छत्तीसट्ठारसएवारसनवएहिं छट्ठपडिकमणं ।
सीदिसयं णउदीहि य सट्ठी पणदालएहि मूलगुणं ॥ ९ ॥

षट्त्रिंशदष्टादशद्वादशनवकैः षष्ठप्रतिक्रमणं ।
अशीतिशतनवतिभिः च षष्टिपंचचत्वारिंशद्भिः मूलगुणं ॥

अस्या अर्थः—एकेन्द्रियाणां अशीत्यधिकशतस्य पंचकल्याणमेकं पूर्वार्धप्रतिक्रमणं भवति । द्वीन्द्रियाणां नवतीनां पंचकल्याणं । त्रीन्द्रियाणां षष्टीनां पंचकल्याणं । चतुरिन्द्रियाणां पंचचत्वारिंशानां पंचकल्याणं पूर्वार्धप्रतिक्रमणपूर्वकं भवति ॥

पंचिंदिया असण्णी वहमाणेऽचेलमूलगुणवंते ।
थिर अथिर पयदचारी अप्पयदे वा वि इदरो (२) य ॥ १० ॥

पंचेन्द्रियाणाममंज्ञिनां वधेऽचेलमूलगुणवति ।
स्थिरेऽस्थिरे प्रयत्नचारिणि अप्रयत्ने वाऽपि इतरस्मिन् च ॥

अस्या अर्थः—एकासंज्ञिपंचेन्द्रिय अप्रमत्त स्थिर विपरीत एवमष्टभंगो जात (१) ॥

ताण कमेण य छेदो तिण्णुववासा य छट्ठ (छट्ठ) मूलगुणं ।
पणगं तिण्णुववासा छट्ठं लहुमेव एकम्हि ॥ ११ ॥

तेषां क्रमेण च छेदः त्रय उपवासाश्च षष्ठ षष्ठं मूलगुणं ।
पंचकं त्रय उपवासाः षष्ठं लघु एव एकस्मिन् ॥

---

१ एकेन्द्रियजीव—वधे एकं कायोत्सर्गः । द्वीन्द्रीये द्वौ इत्यादि । एवमग्रेऽपि ॥

अस्या अर्थः—अष्टजनेभ्य प्रायश्चित्तं प्रति क्रमेण । एकासंज्ञिपंचेन्द्रिये हते मूलगुणे स्थिर प्रयत्नचारी तस्योपवासत्रय । मूलधारिणोऽप्रयत्ने स्थिरस्य षष्ठं स्यात् । मूलगुणेऽस्थिरस्य यत्नपरस्य षष्ठ स्यात् । मूलगुणेऽस्थिरस्य अप्रयत्नपरस्य कल्याणं । उत्तरगुणे स्थिरस्य प्रयत्नपरस्य कल्याणं । उत्तरगुणे स्थिरस्य अप्रयत्नपरस्य उपवासत्रय । उत्तरगुणेऽस्थिरस्य प्रयत्नपरस्य षष्ठमेक । उत्तरगुणेऽस्थिरस्य अप्रयत्नचारिण लघुकल्याणकमेकं । अथैकवारं अज्ञानतो ज्ञानतो वारं वार वा मूलगुणधारिणां सप्रयत्नस्थिरत्रिरात्र (षष्ठं) । मूलगुणधारिणा अप्रयत्नत (स्थिराणां) लघुकल्याणमेकं मूलगुणेऽस्थिर प्रयत्नपर पचकल्याण । अस्थिर अप्रयत्न मूलच्छेद । उत्तरगुणे स्थिर. प्रयत्नपर उपवासत्रय । उत्तरगुणे स्थिर अप्रयत्नपर षष्ठं । उत्तरगुणेऽस्थिरप्रयत्नपर. लघुकल्याणमेक । अस्थिरोत्तरगुणस्य अप्रयत्नपरस्य पचकल्याणमेक बहुवार ॥

बहुवारेसु य छेदो छट्ठ लहु मासिय च मूलं पि ।
तिण्णुववासा छट्ठ लहु सठाणमट्ठण्हं ॥ १२ ॥

बहुवारेषु च च्छेद. षष्ठ लघु मासिक च मूलमपि ।
त्रय उपवासा. षष्ठ लघु सम्थानमष्टानाम् ॥

अस्या गाथाया अर्थ पश्चिमगाथाया प्रागुक्त ॥

उत्तरमूलगुणाण पमाददप्पम्मि जाण मलहरणं ।
काउस्सग्गुववासा इंदियगणणा य पाणगणणा य ॥ १३ ॥

उत्तरमूलगुणाना प्रमाददर्पयो. जानीहि मलहरण ।
कायोत्सर्गोपवासा इन्द्रियगणनया च प्राणगणनया च ॥

अस्या अर्थ—उत्तरगुणधारिण प्राणगणनया (इन्द्रियगणनया) प्रमादे कायोत्सर्गा असंज्ञिपचेन्द्रिय यावत् । उत्तरगुणधारिण दर्पे इन्द्रियगणनया प्राणगणनया उपवासा । (मूलगुणधारिण प्रमादे इन्द्रियगणनया कायोत्सर्गाः) । मूलगुणधारिणो दर्पे प्राणगणनया उपवासा असंज्ञिपंचेन्द्रियं यावत् ॥

---

१ यत्नेकृतेऽपि जीववधे सति । २ अप्रयत्ने कृते ।

अहवा जत्ताजत्ते इंदियगणणा य पाणगणणा य ।
काउस्सग्गा होंति हु उववासा बारसादीहिं ॥ १४ ॥

अथवा यत्नायत्नयो: इन्द्रियगणनया च प्राणगणनया च ।
कायोत्सर्गा भवन्ति हि उपवासा द्वादशादिभि: ॥

अस्या अर्थ:—एव प्रयत्ने इन्द्रियगणनया कायोत्सर्ग । अप्रयत्नस्य प्राणगणनया कायोत्सर्ग ॥

रिसिसावयबालाणं इत्थीगोघादगम्हि मलहरणं ।
बारसमासादीणं अद्धद्धक्कमेण छट्ठ तवं ॥ १५ ॥

ऋषिश्रावकबालाना स्त्रीगोघातने मलहरणम् ।
द्वादशमासादीना अर्धार्धक्रमेण षष्ठ तप: ॥

अस्या अर्थ—ऋषिघातकस्य द्वादशमास यावत् षष्ठ । श्रावकघातकस्य षण्मासान्त्रिरात्र । बालकघातकस्य त्रिमास त्रिरात्र । स्त्रीवधकस्य अर्धमासिक षष्ठ । गोवधकस्य पंचविंशतिदिनानि त्रिरात्र ॥

पासडालंभत्ता जोणिसरिसाण घादणे छेदो ।
छम्मास छट्ठतवं अद्धद्धक्कमेण कायव्वं ॥ १६ ॥

पाषण्डलग्नक्ताना योनिसदृशाना घातने छेद: ।
षण्मास षष्ठतप: अर्धार्धक्रमेण कर्तव्य ॥

अस्या अर्थ—अन्यलिंगिवधाया षण्मासानि षष्ठ भवति । दीक्षितवधाया मासत्रयं त्रिरात्र । भक्ता महेश्वरादयस्तेषां वधाया सार्धमास त्रिरात्र ॥

बभणखत्तियवइसा सुद्दा चउप्पायगमणघादम्मि ।
एयंतरअट्ठमासे अद्धद्धं छट्ठमंते च ॥ १७ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याना शूद्राणां चतुष्पदगमनघातने ।
एकान्तराष्टमासा अर्धार्धं षष्ठमन्ते च ॥

अस्या अर्थ—ब्राह्मणवधायां मासाष्टकं एकान्तरं अन्ते षष्ठं । क्षत्रियघाते चतुर्मासमेकान्तरमन्ते षष्ठं । वैश्यवधे द्विमासमेकान्तरमन्ते षष्ठं । शूद्रवधे मासमेकान्तरं अन्ते षष्ठं । ग्राममृगे चतुष्पदवधे पंचदशदिवसमेकान्तर अन्ते षष्ठं ॥

तणमंसासिविहंगा उरपरिसप्पाण जलचरवहम्मि ।
चउदसआइं काउं णवखमणाणि मलहरणं ॥ १८ ॥

तृणमासाशिविहगाना उर:परिसर्पाणा जलचरवधे ।
चतुर्दशादिक कृत्वा नवक्षमणानि मलहरण ॥

अस्या अर्थ—तृणचराणा वधे चतुर्दशोपवासा । मासाहारिचतुष्पदवधे त्रयोदशोपवासा । पक्षिवधे द्वादशोपवासा । सर्पवधे एकादशोपवासा । उरर(ट) वधे दशोपवासा । जलचरवधे नवोपवासा ॥

एव प्रथमव्रतमुपगतम् ।

सइ पच्चक्ख परोक्खे उभयं तियकरण मोसभासिस्स ।
काओसग्गुववासा एगुत्तर असइ संठाणं ॥ १९ ॥

सकृत् प्रत्यक्षे परोक्षे उभयस्मिन् त्रिकरणे मृषाभाषिण: ।
कायोत्सर्गोपवासा एकोत्तरा असकृत् सस्थान ॥

अस्या अर्थ—एकवार प्रत्यक्षे असत्यमुक्ते कायोत्सर्ग । परोक्षे असत्यमुक्ते उपवासमेकं । प्रत्यक्षपरोक्षे असत्यमुक्ते उपवासद्वयं । मनोवचनकाये असत्यमुक्ते उपवासत्रयं । बहुवारं प्रत्यक्षे कल्याणमेक । परोक्षेऽपि पंचकल्याणं । उभयासत्येऽपि पंचकल्याणम् ॥

एवं सत्यव्रतम् ।

सइ सुण्णम्हि समक्खे अणासभोमे अदत्तगहणम्मि ।
काउस्सग्गुववासा एगुत्तर असइ मूलगुणं ॥ २० ॥

सकृच्छून्ये समक्षे अनाभोगे अदत्तग्रहणे ।
कायोत्सर्गोपवासा एकोत्तरा असकृत् मूलगुणं ॥

अस्या अर्थः—निर्जनेऽदृश्यमाने मोहेन गृहीतं तावत् क्षणेन पुनस्तत्रैव स्थापिते कायोत्सर्गेकेन शुद्धयति । प्रत्यक्षे उपवासः । अनालोचिते उपवासद्वयं । ज्ञाते गृहीते उपवासत्रयं । बहुवारान् गृहीते पंचकल्याणं । कस्येदं भणित्वा गृहीते पंचकल्याणम् ॥

अदत्तादानविरतिव्रतम्

पादोसणियमरहिए वदणसहियस्स हीणसज्झाए ।
सुत्तस्स रेदखिरणे उवठावण दुण्णि खवणाणि ॥ २१ ॥

प्रदोषनियमरहिते वन्दनासहितस्य हीनस्वाध्याये ।
सुप्तस्य रेतःक्षरणे उपस्थापनं द्वे क्षमणे ॥

अस्या अर्थः—प्रथमनिशि समये प्रहरे नियमस्वाध्यायं विना देववन्दनाकृते तु सुप्ते दुःस्वप्ने दृष्टे प्रतिक्रमणमुपवासद्वयं । नियमे कृते देववन्दनास्वाध्यायं विना निद्राया रेतःस्रावे नियमसहितमुपवासमेकम् ॥

णियमे जुत्तस्स पुणो सेसे रहिदस्स छेद पुव्वह्मि ।
सज्झायरहियसुत्तो पावइ उववास णियम च ॥ २२ ॥

नियमेन युक्तस्य पुनः शेषैः रहितस्य छेदः पूर्वस्मिन् ।
स्वाध्यायरहितसुप्तः प्राप्नोति उपवासं नियमं च ॥

अस्या अर्थः—स्वाध्यायारहितः सुप्तः देववन्दनाप्रतिक्रमणकृते रात्रौ निद्रायां स्वप्ने सति रेतःपरिस्रावो जातः प्राप्नोति उपवाससहितं प्रतिक्रमणम् ॥

रार्त्ति णियमे सुत्तो पच्छिमभायम्मि गहियसज्झाओ ।
णियमुववासेण तहा सोहिज्जइ रेदखिरणेण ॥ २३ ॥

रात्रौ नियमेन सुप्तः पश्चिमभागे गृहितस्वाध्यायः ।
नियमोपवासाभ्या तथा शुद्ध्यते रेतःक्षरणेन ॥

अस्या अर्थः—उदिते प्रहरे स्वाध्याये गृहीते नियमदेववन्दनाकृते निद्रायां दुःस्वप्ने जाते प्रतिक्रमणपूर्वकमुपवास । अथ प्रतिक्रमण विना उपवासद्वयम् ॥

सज्झायणियमसहिदे वंदणरहियस्स रेदणिस्सरणे ।
उवठावण उववासो सोहिज्जइ रेदखिरणेण ॥ २४ ॥

स्वाध्यायनियमसहिते वन्दनारहितस्य रेतोनिःसरणे ।
उपस्थापनेन उपवासेन शुद्ध्यते रेतःक्षरणेन ॥

अस्या अर्थः—पूर्व एव कथित ॥

सज्झायणियमवंदण तिण्णि वि काऊण जो सुयइ साहू ।
रेते णिस्सरणम्हि य उवठावण छट्ठ दिवसम्मि ॥ २५ ॥

स्वाध्यायनियमवन्दना तिस्रोऽपि कृत्वा य स्वपिति साधुः ।
रेतसि निःसरणे च उपस्थापन षष्ठ दिवसे ॥

अस्या अर्थः—स्वाध्यायनियमवन्दनावसाने निद्रागामतिचारे प्रतिक्रमणपूर्वक त्रिरात्रं । मध्यान्हे प्रतिक्रमणषष्ठम् ॥

अव्बंभं भासंतो इत्थिम्हि य मोहिदो य इच्छंतो ।
काउस्सग्गुववासो उववासा छट्ठ दप्पम्मि ॥ २६ ॥

अब्रह्म भाषमाणः स्त्रिया च मोहितश्चेच्छन् ।
कायोत्सर्गोपवासौ उपवासौ षष्ठ दर्पे ॥

अस्या अर्थः—सकामवचनभाषी स्त्रीदर्शनाभिलाषे उपवासमेकं । चित्ताभिलाषपरिणामे उपवासौ द्वौ । स्त्रीदर्शनचित्ताभिलाषे—इन्द्रियोत्कोचने उपवासत्रयम् ॥

तिरियाईउवसग्गे अव्वंभं सेवयस्स मूलगुणं ।
मूलट्ठाणं दप्पे तिरियाणं सुद्दस्स जणणाए ॥ २७ ॥

तिर्यगाद्युपसर्गे अब्रम्ह सेवमानस्य मूलगुण ।
मूलस्थानं दर्पेण तिरश्चा शुद्धस्य जनज्ञाते ॥

अस्या अर्थ —तिर्यंच अब्रह्मसेवनात् पंचकल्याण । लोकविदिते उद्धते मनोवाक्कायसंभवे मूल याति ॥

चतुर्थ व्रतम् ।

उवयरणठवण लोहे दीणमुहो दाणगहणविक्खादे ।
संगग्गहणे खमणं छट्ठट्ठम मूलगुण मूलं ॥ २८ ॥

उपकरणस्थापने लोभे दीनमुख· दानग्रहणविख्याते ।
मगग्रहणे क्षमण षष्ठ अष्टम मूलगुण मूल ॥

अस्या अर्थ —केनचित् पुरुषेण स्थापिते नष्टे सति उपवास । लोभेन स्थापिते षष्ठोपवास । दीनमुखो याच्यमानोऽष्टम । बहुजनमध्येऽतीव याच्यमानो दीन पंचकल्याणं । अवलुप्ते लुब्धो जात मूलस्थान याति ॥

पंचमं व्रतम् ।

रत्ति गिलाणभत्ते चउविह एकम्हि छट्ठ * खमणाओ ।
उवसग्गे संठाणं चरियापविठस्स मूलमिदी * ॥ २९ ॥

रात्रौ ग्लानभक्ते चतुर्विधे एकस्मिन् षष्ठं क्षमण ।
उपसर्गे सस्थान चर्याप्रविष्टस्य मूलमिति ॥

अस्या अर्थ —रात्रौ व्याधियुते चतुर्विधाहारे षष्ठ । अथैकविधाहारे भुक्ते उपवास । उपसर्गे रात्रिभोजी पंचकल्याणं । रात्रौ चर्याप्रविष्ट मूलं गच्छति । न तस्य पंक्तिभोजनमिति ॥

षष्ठ व्रतम्

---

* पुष्पमध्यगत पाठ पुस्तकाच्च्युत. । अत. स्वबुद्धया परिकल्प्य पूर्णीकृत· ।—सं

वायामगमण मुणिणो उवमग्गे पासुगे असुद्धम्हि।
काउस्सग्गो खमणं अपुण्णकोसम्हि दायव्वं ॥ ३० ॥

व्यायामगमने मुने. उन्मार्गे प्रासुकेऽशुद्धे।
कायोत्सर्गः क्षमणं अपूर्णक्रोशे दातव्य ॥

अस्या अर्थः—गव्यउमध्ये व्यायामे प्रासुके कायोत्सर्ग । उत्पथगमनात अप्रासुके उपवास· ॥

वासारत्ते दिवसे पासुगपंथम्हि इयर राइं च।
तिण्णिदुयतियदुइकोसे एक्केकं तियचऊखमणा ॥ ३१ ॥

वर्षा-ऋतौ दिवसे प्रासुकपथे इतरस्मिन् रात्रौ च।
त्रिद्वित्रिद्विक्रोशे एकैक त्रिचतु.क्षमणानि ॥

अस्या अर्थः—प्रावृट्काले प्रासुके दिवसे क्रोशत्रये उपवासमेक। मध्यान्हेऽपराह्णे वा अप्रासुके दिवसे क्रोशद्वये उपवासमेक। रात्रौ प्रासुके क्रोशत्रये उपवासत्रय। रात्रौ अप्रासुके क्रोशद्वये उपवासचतुष्टयम् ॥

हेमंते वि हु दिवसे पासुगपंथम्हि इयर राइं च।
छच्चउछच्चउकोसा एक्केक्क विण्णि तियखमणा ॥ ३२ ॥

हेमन्तेऽपि हि दिवसे प्रासुकपथे इतरस्मिन् रात्रौ च।
षट्चतु.षट्चतुःक्रोशाः एकैक द्वे त्रिक्षमणानि ॥

अस्या अर्थ—हेमन्तेऽपराह्णे प्रासुके क्रोशषण्णामुपवासमेकं। मध्यान्हेऽप्रासुके क्रोशचतुर्णा उपवासमेक। रात्रौ प्रासुके क्रोशषण्णामुपवासद्वय। रात्रौ अप्रासुके क्रोशचतुर्णा उपवासत्रयम ॥

गिम्हे दिवसम्मि तहा पासुगपंथेहि इयर राइं च।
णवछणवछकोसे एक्केक्कं दो य दो खमणा ॥ ३३ ॥

ग्रीष्मे दिवसे तथा प्रासुकपथे इतरस्मिन् रात्रौ च।
नवषट्नवषट्क्रोशे एकैक द्वे च द्वे क्षमणे ॥

अस्या अर्थ—ग्रीष्मे मध्यान्हे प्रासुकपथे नवक्रोशाना उपवासमेकं। रात्रौ प्रासुकपथे नवक्रोशानामुपवासद्वय। अप्रासुके षण्णा क्रोशाना उपवासमेकं। अप्रासुके रात्रौ षण्णा क्रोशानामुपवासद्वयम् ॥

काउस्सग्गे सुज्झदि सत्तसु पादेसु पिच्छरहिदेसु।
गब्बूदिगमण खमण णोखमण होइ णिप्पिच्छे ॥ ३४ ॥

कायोत्सर्गेण शुद्ध्यति सप्तसु पादेषु पिच्छिकारहितेषु।
गव्यूतिगमने क्षमण नोक्षमण भवति निष्पिछे ॥

अस्या अर्थः—प्रकटार्थ ॥

जण्हम्मि विउस्सग्गे खमणं चउरंगुलम्मि तस्सुवरिं।
तत्तो य दुगुणदुगुणा उववासा अगुलचउक्के ॥ ३५ ॥

जानौ व्युत्सर्गेण क्षमण चतुरगुले तस्योपरि।
ततश्च द्विगुणद्विगुणा उपवासा अगुलचतुष्के ॥

अस्या अर्थ—नद्यामुत्तरणे जानुमात्रपानार्थं भवति तदा कायोत्सर्गेण शुद्ध्यते। तदूर्ध्वं चतुरंगुलप्रमाणेन द्विगुणद्विगुणाउपवासा भवन्ति ॥

ईर्यासमिति।

भासताण मज्झे जो बोलइ पुव्वछिण्णदोस च।
काउस्सग्ग छट्ठं अट्ठम अविरदपसुत्तबोधम्हि ॥ ३६ ॥

भाषमाणयो. मध्ये यः ब्रवीति पूर्वच्छिन्नदोष च।
कायोत्सर्ग षष्ठ अष्टम अविरतप्रसुप्तबोधे ॥

अस्या अर्थ—गोष्ठिजनमध्ये गतच्छिन्नदोषेषु आत्मप्रतिष्ठा कर्तुं ब्रूते एकवारामयं कायोत्सर्गेण शुद्ध्यति। एकें दोसु विचक्खया अवरु जो आपणा बोलइ तस्स छट्ठं। णिंदा करतु बोलइ तस्स अट्ठम। अप्रतिबोधविरोधवचनं परोपतापहिंसावचनं बोले महात्रिरात्रम् ॥

छकम्मदेसयरणे उववासो अट्ठमं च गीदादी ।
चाउव्वण्णवराधे गण (दो) णिग्घाडणं होइ ॥ ३७ ॥

षट्कर्मदेशकरणे उपवास· अष्टम च गीतादे· ।
चतुर्वर्णापराधे गणतो निर्घाटन भवति ॥

अस्या अर्थः—गृहस्थषट्कर्मोपदेशके उपवासमेक । गीतं वाद्यं नृत्यं स्वयं करोति अष्टम । चातुर्वर्ण्यस्यापराध वदति स निर्घाटनीयो भवति—परगणे प्रेषणीय इति ॥

भाषासमिति

अण्णाणवाहिदप्पे भक्खणं कंदादि एकबहुवारं ।
काउस्सग्गुववासा खवण पणगं च मूलगुणं ॥ ३८ ॥

अज्ञानव्याधिदर्पैः भक्षण कन्दादेः एकबहुवार ।
कायोत्सर्गोपवासौ क्षमण पचक च मूलगुण ॥

अस्या अर्थ—अज्ञानत्वेन कन्दादिभक्षण करोति एकवार कायोत्सर्ग । बहु वाराया उपवासमेक । व्याधिग्रस्ते एकवाराया उपवासमेक । बहुवाराया खादति तदा कल्याणमेक । अथ प्रमत्तो भूत्वा हरितकदादिक ज्ञात्वा भक्षयति तस्य पचकल्याण । अथ दर्पेण वर्षानुवर्ष खादति तस्य (म) मूलस्थान याति ॥

णिट्ठवणं भणिय भुत्ते वसालंवे य कुड्डढक्कस्स ।
चउरंगुलठिदिरहिदे खवणगिलाणे य छट्ठ ससेसु ॥ ३९ ॥

निष्ठीवनं भणित्वा भुक्ते वशालम्बेन च कुड्यावष्टंभस्य ।
चतुरंगुलस्थितिरहिते क्षमण ग्लाने च षष्ठ शेषेषु ॥

अस्या अर्थ—व्याधिग्रस्तो निष्ठीवनं करोति । कुड्यावष्टंभं करोति । पादान्तरं चतुरगुल लंघयति तदा उपवासमेक । अथ आरोग्य दर्पेण करोति तदा षष्ठं भवति ॥

कागादिअंतराए उववासो गहियउग्गहे भग्गे ।
जादे विवेगकरणं सव्वं भुत्तस्स खमण खु ॥ ४० ॥

काकाद्यन्तराये उपवासः गृहीतावग्रहे भग्ने ।
जाते विवेककरण सर्वं भुक्तस्य क्षमण खलु ॥

अस्या अर्थ—भोजनमकुर्वन् अ न शरीरे ल······कादिविष्टे दृष्टे भुक्ते तदा उपवास । अवग्रह ज्ञात्वा भग्ने सति अन्तराय कर्तव्य । अथ न स्मरते भुक्त तदा उपवास ॥

वड्डंतरायजादे सुदं पि भोत्तस्स होदि खमणं तु ।
सय भुंजमाण दिट्ठे छट्ठट्ठम मुहे य पडिकमणं ॥ ४१ ॥

बृहदन्तरायजाते श्रुतेऽपि भोक्तुः भवति क्षमण तु ।
स्वय भुज्यमाने दृष्टे षष्ठ अष्टम मुखे च प्रतिक्रमण ॥

अस्या अर्थः—बृहदन्तरायजाते गृहे भुक्तानन्तर श्रुते तदा प्रतिक्रमणपूर्वकमुपवास । स्वहस्ते दृष्टे षष्ठ । स्वमुखोपलब्धेऽष्टम प्रतिक्रमणपूर्वकम् ॥

सज्झायरहियकाले गामंतरगमण गोयरग्गं च ।
काउस्सग्गुववासो जहाकमं होइ मलहरण ॥ ४२ ॥

स्वाध्यायरहितकाले ग्रामान्तरगमन गोचरग च ।
कायोत्सर्गोपवासौ यथाक्रम भवति मलहरण ॥

अस्या अर्थ—पूर्वाह्णे त्रिघटिकास्वाध्याये कायोत्सर्ग । एकग्रामे देववन्दनां कृत्वा अपरग्रामे भुक्ते तदा उपवास. ॥

आधाकम्मे भुत्ते गिलाण णीरोय इक्कबहुवारे ।
उववास छट्ठ मासिय मूल पि य होइ मलहरण ॥ ४३ ॥

१ स्मरण तद्भोजनपरिहार एव प्रायश्चित्तं ।

आधाकर्मणि भुक्ते ग्लानः नीरोगः एकबहुवारे ।
उपवासः षष्ठ मासिकं मूलमपि च भवति मलहरणं ॥

अस्या अर्थः—व्याधिग्रस्त आधाकर्मणि भुक्ते तस्योपवासः । अथ बहुवारायां षष्ठं । अथ आरोग्यस्य पंचकल्याण । बहुवाराया भुक्ते स मूलस्थानीभवति ॥

एषणासमिति ।

कट्ठादिवियडिचालण ठाणादो वा खिवेज्ज अण्णत्तं ।
काउस्सग्गं पाइय चक्खूविसयह्मि उववासो ॥ ४४ ॥

काष्ठादिवियडिचालन स्थानतो वा क्षिपेदन्यत्र ।
कायोत्सर्गं प्राप्नोति अचक्षुविषये उपवासः ॥

अस्या अर्थः—काष्ठादिवियडि अन्यत्र स्थित अन्यत्र स्थापिते कायोत्सर्ग । अथातो वियडिं पृथक्कृत्वा रात्रौ स्थापित उपवासमेक । अन्धकारे विशेषत ॥

आदाननिक्षेपणासमिति ।

हरियादिबीज उवरि उच्चाराई करेइ राइम्हि ।
थोवे काउस्सग्गो उववासो जाण बहुवारे ॥ ४५ ॥

हरितादिबीजाना उपरि उच्चारादिकं करोति रात्रौ ।
स्तोके कायोत्सर्ग उपवास जानीहि बहुवारे ॥

अस्या अर्थः—रात्रौ हरितकायोपरि वोसरणे कायोत्सर्ग । तदेव बहुवारान् उपवासम ॥

प्रतिष्ठापनासमिति ।

परिसरसघाणचक्खूसोददिचारे पयत्तइयरस्स ।
काउस्सग्गुववासा एगुत्तरवड्ढिया कमसो ॥ ४६ ॥

स्पर्शरसघ्राणचक्षु.श्रोत्रातिचारे प्रयत्नेतरयो· ।
कायोत्सर्गोपवासा एकोत्तरवर्द्धिता क्रमश ॥

अस्या अर्थ—प्रयत्नाचारस्य मुने कायस्पर्शस्योपरिचित्ताभिलाषेकायोत्सर्ग एक । रसस्योपरि चित्ताभिलाषे कायोत्सर्गौ २ (द्वौ) । घ्राणस्पृहाभिलाषे कायोत्सर्गा ३ (त्रय) । चक्षु स्पृहाया कायोत्सर्गा ४ (चत्वार) । श्रोत्रस्पृहाया कायोत्सर्गा ५ (पञ्च) । अथ अप्रयत्नचारिण एकवारं चित्तोत्कोचे उपवास १ (एक) । तथा तेन क्रमेण जिव्हाघ्राणचक्षु श्रवणाना एकवारचित्तोत्कोच जाते सति उपवासमेकमिति एकैकोत्तरवृद्धया ॥

इन्द्रियनिरोधम ।

वंदणणियमविरहिदे उववासो होइ कालछिण्णे य ।
तह सज्झायचउक्के काउसग्गो अवेलाए ॥ ४७ ॥

वन्दनानियमरहिते उपवासो भवति कालछिन्ने च ।
तथा स्वाध्यायचतुष्के कायोत्सर्ग अवेलाया ॥

अस्या अर्थ—वन्दनया विना उपवास । पूर्वाह्ने देववन्दना त्रीणि घटिका यावत् युक्तं । अपराह्ने घटिका चत्वारि यावत् वन्दना । मध्यान्हे घटिकाद्वय वन्दना स्वाध्यायचत्वारि न कुर्वंति सति उपवास । अवेलाया गृहीते सति कायोत्सर्गम् ॥

आवासयपरिहीणो अद्धं इक्कं च चउरमासाणि ।
खवण पण संठाणं मूलम्हि य होइ वासम्हि ॥ ४८ ॥

आवश्यकपरिहीन. अर्द्ध एक च चतुर्मासान् ।
क्षमण पचक सस्थान मूल च भवति वर्षे ॥

अस्या अर्थः—षडावश्यक एक दिसव जइ न होइ उववासु होइ । मासमेक कल्याणं । मासचउण्ह पंचकल्याण । नियम न करत उपवासु । वर्षमेक नियमं न भवति षडावश्यकं वशाते च्च मूल जाते निय (म) महैव वंदना । वेलातिक्रमो भवति तदुपवासं ॥

तिहि अदिकंते पक्खे चाउम्मासे य जाम वासो य ।
सो छट्ठावण छेदो णादूण य होदि कायव्व ॥ ४९ ॥

त्रिषु अतिक्रान्तेषु पक्षेषु चतुर्मासेषु च यावत् वर्षे च ।
स षष्ठ उपस्थापन छेदो ज्ञात्वा च भवति कर्तव्यम् ॥

अस्या अर्थः—त्रिपक्षे अथ मासदिवसहं अथवा वर्षदिवसह प्रतिक्रमण न भवति तदा मूल याति। चातुर्मासे पच प्रतिक्रमणा न भवन्ति द्विगुणमुपवासा भवन्ति ॥

आवश्यकशुद्धि ।

चाउम्मासियवरिसियजुयतरे लोच चेव अदिचारे ।
उववास छट्ठ मासिय गिलाणइयरेण अणुग्घाडं ॥ ५० ॥

चातुर्मासिकवार्षिकयुगान्तरे लोचे चैवातिचारे ।
उपवास षष्ठ मासिक ग्लानेतरेण अनुद्घाट ॥

अस्या अर्थः—लोचे चातुर्मासिकेऽतिक्रमे तदा उपवासमेक। सवत्सरे तु यदा न भवति तदा षष्ठोपवास भवति। पचवर्षे पचकल्याण। निर्व्याधितस्तु निरन्तर करोति ॥

लोच ।

उवसग्गवाहिकारणदप्पेणाचेलभंगकरणम्हि ।
उववासो छट्ठ मासिय कमेण मूलं तदो इसइ ॥ ५१ ॥

उपसर्गव्याधिकारणदर्पेण अचेलभगकरणे ।
उपवासः षष्ठ मासिकं क्रमेण मूल ततः इच्छति ॥

अस्या अर्थः—उपसर्गभयेन वस्त्रपरिधानं करोति तदोपवासः । व्याधेः वस्त्रपरिधानं करोति तदा षष्ठमुपवासः । केनचित्कारणेन रागबुद्धिः पंचकल्याणं । दर्पेण परिधानं मूलं याति । अथ स्त्रियाभिलाषे परिधानं तदा मूलं याति ॥

अचेलकम् ।

दंतवणण्हाणभंगे गिहत्थसिज्जा सराइए सुत्ते ।
एक्के वारे पणयं बहुवारे पंचकल्लाणं ॥ ५२ ॥

दन्तमनस्नानभंगे गृहस्थशय्यायां सरागेण सुप्ते ।
एकस्मिन् वारे पंचकं बहुवारे पंचकल्याणं ॥

अस्या अर्थः—मृदुशयनमवलोक्य क्षितिशयनं न करोति एकवारे कल्याणं । बहुवारायां पंचकल्याणं ॥

अस्नानक्षितिशयनदन्तधावनानि ।

अट्ठियअणयभुत्ते पमाददप्पह्मि इक्कबहुवारे ।
पणगं मासियं छेदो मूलं च कमेण जणणाये ॥ ५३ ॥

अस्थितानेकभुक्ते प्रमाददर्पे एकबहुवारे ।
पंचकं मासिकं छेदो मूलं च क्रमेण जनज्ञाते ॥

अस्या अर्थः—स्थितिभोजनैकभोजनभंगे एकवारायां प्रमादे कल्याणं । बहुवारं प्रमादे पंचकल्याणं । एकभक्तं भग्नं दर्पे बहुवारं मूलं याति । चशब्दाज्जनेन ज्ञाते मोहेन भुक्ते मूलं याति ॥

स्थितिभोजनैकभक्तो ।

समिदिंदियखिदिसयणे लोचे दंतवणसंकिलेसाणं ।
काउस्सग्गुववासा बहुवारे मूलमिदराणं ॥ ५४ ॥

समितीन्द्रियक्षितिशयने लोचे दन्तमने सङ्क्लेशानाम् ।
कायोत्सर्गोपवासौ बहुवारे मूलमितरेषाम् ॥

अस्या अर्थः—एकवारे प्रमादे कृते कायोत्सर्गं । बहुवारायां उपवासं ॥

मूलगुणा ।

अब्भोवगासठाणादिगा य अथिरा हु दुविह आदाव ।
अत्तोरणतरुमूलं थिरजोगा होंति णायव्वा ॥ ५५ ॥

अभ्रावकाशस्थानादिकाश्च अस्थिरा हि द्विविध आताप. ।
अतोरणतरुमूलौ स्थिरयोगौ भवत. ज्ञातव्यौ ॥

अस्या अर्थः—अभ्रावकाशस्थानमौनवीरासनानि चत्वारि चलयोगा । आतापन स्थिरोऽस्थिरश्च । अतोरणयोगस्तरुमूलयोगौ एतौ स्थिरौ ॥

थिरजोगाणं भंगे वाहिपडिकारकण्णजावट्टुं ।
जे दिवहा ते खमणा पइण्णभग्गाण इयराण ॥ ५६ ॥

स्थिरयोगाना भगे व्याधिप्रतीकारकरणजापार्थम् ।
यावन्ति दिवसानि तावन्ति क्षमणानि प्रतिज्ञाभग्नानां इतरेषाम् ॥

अस्या अर्थः—स्थिरयोगभंगे आगन्तुकदिनानि उपोषितव्यानि । अस्थिरयोग-प्रतिज्ञाभंगे तेन च क्रमेण उपवासा , पर किन्तु प्रतिक्रमणपूर्वक स्थिति' ॥

सप्पडिकमणं मासिय तच्चुववासा तहेव लहुमासं ।
पढमे पक्खे मज्झिम पच्छिमपक्खे य ओगवहे ॥ ५७ ॥

सप्रतिक्रमण मासिकं तावन्त उपवासाः तथैव लघुमासः ।
प्रथमे पक्षे मध्यमे पश्चिमपक्षे च योगवधे ॥

अस्या अर्थ—प्रथमे पक्षे योगहते प्रतिक्रमणपूर्वकं पंचकल्याणं । मध्यमे पक्षे योगभंगे सति आगामीयदिवसा भवन्ति तत्प्रमाणा उपवासा कर्तव्या । अन्तिम-पक्षे योगभंगे सति लघुकल्याणम् ॥

उत्तरगुणा ।

अप्पासुगे वसंतो सइ बहुवारे य मोहहंकारे ।
उववास पणय मासिय सोवट्ठाण च जाण मूलं तु ॥ ५८ ॥

अप्रासुके वसन् सकृत् बहुवारे च मोहाहंकाराभ्यां ।
उपवास पञ्चक मासिक सोपस्थान च जानीहि मूल तु ॥

अस्या अर्थ—अप्रासुकस्थाने स्थिते सति प्रतिक्रमणपूर्वक उपवास । बहुवारे स्थिते सति पंचकल्याण । अहंकारात् स्थिते सति मूलस्थान याति ॥

गामादिआसयाण अजाणमाणो करेइ उवएसं ।
जाणंतो धम्मट्ठ पण मासिय मूल गारवि वि ॥ ५९ ॥

ग्रामाद्याश्रिताना अजानान करोति उपदेश ।
जानान· धर्मार्थं पञ्चक मासिक मूल गर्वेऽपि ॥

अस्या अर्थः—अजानमानो ग्रामाश्रयजनस्य उपदेशे दीयमाने प्रतिक्रमणसहित पंचकल्याण । आगम धर्मार्थे तस्य बहुवारमुपदिशति तदा प्रतिक्रमणसहित पंचकल्याण । गारवे बहुवारे उपदेशे मूलस्थानम् ॥

आलोयण तणुसग्गो अयाणमाणस्स पूयउवएसे ।
सइं बहुवारे सुज्झदि उववासे पणय पडिकमणे ॥ ६० ॥

आलोचना तनूत्सर्ग. अजानानस्य पूजोपदेशे ।
सकृत् बहुवारे शुद्ध्यति उपवासेन पञ्चकेन प्रतिक्रमणेन ॥

अस्या अर्थः—अजानत स्तोकदेवार्चने हि उपदेसु देइ वि पूजाकरावता आलोचयित्वा कायोत्सर्गेण शुद्ध्यति । तथा च अज्ञानवत्वेन बहुवाराया स्तोकपूजा उपवासु । बृहत्पूजोपदेशे प्रतिक्रमणपूर्वकं कल्याणम् ॥

जाणंतस्स विसोही पूयाकरणम्हि इक्कबहुवारे ।
मासं मासिय बहुसो वधकरणे थूलपडिकमणं ॥ ६१ ॥

जानानस्य विशुद्धिः पूजाकरणे एकबहुवारे ।
मास मासिक बहुश· वधकरणे स्थूलप्रतिक्रमण ॥

अस्या अर्थः—आगमु जाणवि पूजोपदेश दायमाने कल्याणं । अर्चनविधि बहुवारे आगम ज्ञाते सति पंचकल्याण । आत्मन सन्निधाने स्थित्वा हिंसादिधर्मोपदेशनं करोति बृहदर्चनहिंसा मूलस्थानम ॥

इति रिया जावकालिय समणे भुत्तो पि एइ गुजेइ ।
अण्णाहे उववासो मासिय पडिकमण जणणादे ॥ ६२ ॥

।

अज्ञाते उपवास मासिकं प्रतिक्रमण जनज्ञाते ॥

अस्या अर्थ—*नयनव्यथया जाते उपवासु । अदृश्यमाने व्यथाऽसक्ते मति* उपवासु । जनपदेन ज्ञाते भयस्थितिधावमानेन वा उपवास । तदेव भुजान बहुवारायां प्रतिक्रमणपूर्वक कल्याणम् ॥

वददंसणा दु भट्ठे संभोगी जो मुहादिसंठप्पे ? ।
अरुहादिअवण्णेण य पावइ उववास पडिकमणं ॥ ६३ ॥

व्रतदर्शनात्तु भ्रष्टेन सभोगी य मुखादि संस्थिते । ?
अर्हदाद्यवर्णेन च प्राप्नोति उपवास प्रतिक्रमण ॥

अस्या अर्थ—व्रतदर्शनभ्रष्टपुरुषेण सह सागत्यदोषेण आगमविरुद्धवचनं ब्रूते । आगमु धम्मु देउ निंदे (आगमधर्मदेवनिन्दायां) पंचपरमेष्ठिप्रतिकूलपुरुषाणां सह सग धर्मेण दोषस्य प्रतिक्रमणपूर्वकमुपवासम् ॥

विज्जामंतेचोज्जं अट्ठंगणिमित्तमूलचुण्णाणि ।
जो कुणइ मोक्ख णियमा पावइ उववास पडिकमणं ॥ ६४ ॥

विद्यामंत्रातोद्याष्टाङ्गनिमित्तमूलचूर्णानि ।
य करोति नियमात् प्राप्नोति उपवास प्रतिक्रमण ॥

अस्या अर्थ —विद्योपजीवकमन्त्रवाद्यष्टाङ्गनिमित्तोपजीविवशीकरणचूर्णस्नानपाना-द्युपजीवकेन सह मांगत्ये प्रतिक्रमणपूर्वकमुपवासम् ॥

सुतत्थचोरियाए गिण्हंतो विणयपुच्छरहिओ य ।
आलोयण तणुसग्गो पावइ दिंतो वि एमेव ॥ ६५ ॥

सूत्रार्थं चुर्या गृह्णन् विनयपृच्छारहितश्च ।
आलोचना तनुसर्ग प्राप्नोति ददद्पि एवमेव ॥

अस्या अर्थः—सूत्रार्थु आगमु चोरिया वचन (ना) यो जानाति । अथाविनयन पृच्छति तत्रालोचनकायोत्सर्गम ॥

सुत्तत्थं देसंतो सोदारे जो कुणेहिं असमाहिं ।
पावइ चउत्थ छेदो णिण्हवकारो य सुयगुरुणो ॥ ६६ ॥

सूत्रार्थं देशयन् श्रोतरि य करोति असमाधिं ।
प्राप्नोति चतुर्थं छेद निन्हवकारश्च श्रुतगुरूणा ॥

अस्या अर्थः—आगमुसूत्रार्थदेसु (आगमसूत्रार्थदेशक) अनालोचन कथयति श्रोतृणा परिणामभगे करोति श्रुतगुरु न मन्यते तस्योपवासम् ॥

मासं पडि उववासो चाउम्मासे य तहेव अट्ठ चत्तारि ।
संवच्छरिये बारस कायव्वा णिज्जरट्ठाए ॥ ६७ ॥

मास प्रत्युपवास चतुर्मासे च तथैव अष्टौ चत्वारः ।
सवत्सरे द्वादश कर्तव्या निर्जरार्थिना ॥

अस्या अर्थः—आषाढमाससंवत्सरिके उपवासा द्वादश । कार्तिकचतुर्मासे अष्ट । फाल्गुनचतुर्मासे चत्वारि ॥

संथारमसोहंतो पयदापयदेसु खवण पणगं च ।
काउस्सग्गुववासो सुद्धासुद्धम्हि णावाए ॥ ६८ ॥

संस्तरमशोधयत. प्रयत्नाप्रयत्नयोः क्षमण पंचकं च ।
कायोत्सर्गोपवासः शुद्धाशुद्धाया नावाया ॥

अस्या अर्थः—प्रयत्नाचारस्य संस्तरकमशोधयत तस्योपवास । अप्रयत्नाचारस्य कल्याण । मूलं न देंतस्स नावडा मबोधयित्वा नदीमुत्तरति नावायां नियमेन शुद्ध्यति ॥

अयउवयरणे णट्ठे जावदिया अंगुलानि तावदिया ।
उववासा कायव्वा वदंति घणअंगुला केई ॥ ६९ ॥

अय-उपकरणे नष्टे यावन्ति अगुलानि तावन्तः ।
उपवासा. कर्तव्याः वदन्ति घनाङ्गुलानि केचित् ॥

अस्या अर्थ—लोहोपकरणे नष्टे सति यावन्ति अगुलानि भवन्ति तावन्त उपवासा । अपरे केचिदाचार्या घनचतुरस्राङ्गुलमानेनोपवासा ॥

सेसुवयरणे णट्ठे काउस्सग्गो जिणेहि णिद्दिट्ठो ।
रूवादिघादणम्हि य यमेण दुप्परिणामकरणेण ॥ ७० ॥

शेषोपकरणे नष्टे कायोत्सर्गो जिनैः निर्दिष्टः ।
रूपादिघातने च यमेन दुष्परिणामकरणेन ॥

अस्या अर्थ—शेषोपकरणे नष्टे सति कायोत्सर्ग, उपकरणे भग्ने सति अपरे किंचिन्कृत तस्य दोषं ज्ञात्वा कायोत्सर्ग । एकवारकपाटे आकर्षिते नियमेन शुद्ध्यति ॥

चुलिका ।

जह समआणं भणियं सवणीणं तह य होइ मलहरणं ।
वज्जिय तियालजोगं दिणपडिमं छेदमूलं च ॥ ७१ ॥

यथा श्रमणाना भणितं श्रमणीना तथा च भवति मलहरणं।
वर्जयित्वा त्रिकालयोग दिनप्रतिमा छेदमूल च ॥

अस्या अर्थ—यत्प्रायश्चित्तं ऋषीणां यथा तेन विधिना आर्यिकाणां दातव्यं परं किन्तु त्रिकालयोगं सूर्यप्रतिमा न भवति। उत्तरगुणाना सामाचारो न भवति। केन कारणेन मूलच्छेदे जाते सति उपस्थापनाया न याति ॥

सामाचारो कहिओ अज्जाण चेह जो विसेसो दु।
तस्स य भंगेण पुणो गणिणा कुसलेण णिद्दिट्ठं ॥ ७२ ॥

सामाचारः कथित. आर्याणा चेह यो विशेषस्तु।
तस्य च भगेन पुन गणिना कुशलेन निर्दिष्टम् ॥

अस्या अर्थ—ऋषीणा आर्यिकाणा च सामाचारो न ज्ञायते। तथा च प्रायश्चित्त कथनीयम ॥

थिरअथिरा अज्जाए पमाददप्पेहि इक्कबहुवारे।
तणुसय खमणं खमणं पणगं पणगं च छट्ठ मूलगुण ॥ ७३ ॥

स्थिरास्थिरार्याया प्रमाददर्पाभ्या एकबहुवारे।
तनुसर्ग क्षमण क्षमण पञ्चक पचक च षष्ठ मूलगुण ॥

अस्या अर्थ—सामाचारो अ •• अ •• अ • य हि स्थिरचारिकाणा व्युत्सर्गमेकवार प्रमादचारिणीना च बहुवारम्मि उपवास। अथिरचारिणीनां बहुवाराया कल्याण। अथिरचारिणीना प्रमादेन षष्ठ। तेषा बहुवाराया दर्पेण पचकल्याण। अनेन प्रकारेण विधिना। ऋषीणां तथैव च।

अज्जाण चेलधुवणे उववासो आउकायघादम्मि।
काउस्सग्गो कहिओ फासुयणीरेण पत्ताइं ॥ ७४ ॥

आर्याणा चेलधावने उपवासः अप्कायघाते।
कायोत्सर्ग कथितः प्रासुकनीरेण पात्रादे ॥

अस्या अर्थः—आर्यिकाना शीततोयेन युगाधौते उपवासं । कंथा गोणी चक्रयुग एषां प्रत्येकतः उष्णजले प्रक्षालिते कायोत्सर्गम् ॥

मट्टियजलप्पमाणं णाडुं कुड्डादिलेवकरणाए ।
दायव्वा विरदीणं काउस्सग्गादिमासंतं ॥ ७५ ॥

मृत्तिकाजलप्रमाण ज्ञात्वा कुड्यादिलेपकरणे ।
दातव्य विरतीना कायोत्सर्गादिमासान्तम् ॥

अस्या अर्थः—अस्पृश्या दोषदर्शनदिवसात् दिवसचतुष्टय यावत् आयम्बिल-निर्विकृतिपुरिमडलोपवास कर्तव्य ॥

आवसयापि मोणेण चेव तिस्से सदा समुद्दिट्ठा ।
वदरोहणं पि पच्छा कायव्वं गुरुसयासम्मि ॥ ७६ ॥

आवश्यकान्यपि मौनेन चैव तस्याः सदा समुद्दिष्टानि ।
व्रतारोपणमपि पश्चात् कर्तव्य गुरुसकाशे ॥

अस्या अर्थः—पुष्प दृष्ट्वा षडावश्यकक्रिया मौनेन कर्तव्या । पश्चात् गुरूणां सन्निधौ व्रतारोपणम् ॥

तिविहं च होइ ण्हाणं तोएण वदेण मंतसंजुत्त ।
तोएण गिहत्थाणं मंतेण वदेण साहूणं ॥ ७७ ॥

त्रिविध च भवति स्नान तोयेन व्रतेन मन्त्रसयुक्तं ।
तोयेन गृहस्थाना मन्त्रेण व्रतेन साधूनाम् ॥

आर्याणां विशेषप्रायश्चित्तम् ।

जं सवणाण भणियं पायच्छित्तं पि सावयाणं पि ।
दोण्हं तिण्हं छण्हं अद्धद्धकमेण दायव्वं ॥ ७८ ॥

यत् श्रमणाना भणित प्रायश्चित्त अपि श्रावकानामपि ।

द्वयोः त्रयाणा षण्णा अर्धार्धक्रमेण दातव्य ॥

अस्या अर्थः—ऋषीणा यत्प्रायश्चित्त तच्छ्रावकाणामपि भवति । परं किन्तु उत्तमश्रावकाणां ऋषे प्रायश्चित्तस्य अर्द्ध । तस्यार्ध ब्रह्मचारिणां—तदर्ध मध्यमश्रावकस्य प्रायश्चित्त । तदर्ध जघन्यश्रावकस्य प्रायश्चित्त ॥

केई पुण आयरिया विसेससुद्धि कहंति तिण्हं पि ।
बियतियचउत्थभायं गहिऊण य होइ दायव्वं ॥ ७९ ॥

केचित्पुन आचार्याः विशेषशुद्धि कथयन्ति त्रयाणामपि ।

द्विकत्रिकचतुर्थभाग गृहीत्वा च भवति दातव्य ॥

अस्या अर्थ—ऋषाणा प्रायश्चित्तस्य उत्तमश्रावकस्य द्विभाग प्रायश्चित्तं । ब्रह्मचारिणा ऋषीणा प्रायश्चित्तस्य त्रिभागो दातव्य । ऋषीणा प्रायश्चित्तस्य चतुर्थभाग. श्रावकस्य दातव्य ॥

छण्हं पि सावयाणं पचमहापातकं पमादेसु ।
जिणमाहिमा चि य भणिया विसेससोही जिणवरेहिं ॥ ८० ॥

षण्णामपि श्रावकाणा पचमहापातक प्रमादेषु ।

जिनमहिमापि च भणिता विशेषशुद्धिः जिनवरैः ॥

अस्या अर्थ—पंचमहापातक प्रति प्रायश्चित्तोपरि जिनपूजाविशेषशुद्ध्यर्थाय गाथा ॥

तेसिं विसेससोही महुमसमज्जभक्खिदे दप्पे ।
बारस खवणाणि पुणो छट्ठं खु प्रमादचारिस्स ॥ ८१ ॥

तेषां विशेषशुद्धिः मधुमासमद्यभक्षिते दर्पेण ।

द्वादश क्षमणानि पुनः षष्ठं खलु प्रमादचारिणः ॥

अस्या अर्थ—प्रायश्चित्तजनानां षण्णां मधुमांसमद्यभक्षिते सति दर्पेण उपवास-द्वादशप्रायश्चित्तं । प्रमादवशो षष्ठं प्रायश्चित्तं ॥

मुत्तपुरीसे रेदे अभक्खभक्खम्मि होइ तह चेव ।
पंचुंबरादिभक्खे पमादचारीण उववासो ॥ ८२ ॥

मूत्रपुरीषे रेतसि अभक्ष्यभक्षे भवति तथा चैव ।
पचोम्बरादिभक्षे प्रमादचारिणा उपवासः ॥

अस्या अर्थः—दर्पेण मूत्रपुरीषरेतोभक्षणे सति उपवासा द्वादश । **प्रमादे सति** षष्ठं । अथ क्षीरवृक्षाणा पचोदुम्बरफलानि भक्षमाणे प्रमादे उपवासमेकं । **दर्पेण भक्षिते** षष्ठं ॥

गोघादवंदिगहणे अवलंबियमडय पिट्ठ किमिवट्टे ।
छह उववासा कहिया कारुयचंडालअण्णपाणेण ॥ ८३ ॥

गोघातवन्दिग्रहणेन अवलंबितमृतस्य स्पृष्टं कृमिदष्टे ।
षडुपवासा. कथिता कारुकचाण्डालान्नपानेन ॥

अस्या अर्थः—गोघातेन मृतस्य । अथ वृतेन मारित (मृतस्य)। **अथ बद्धेन मृत.। मृतकस्य** कृमि देहे जाते कुहियलिंगशरीरे उपवासा षड् भवन्ति । **कारुकगृह-**चाण्डालखाने पाने उपवासा षड् भवन्ति । अथ ते सह संस्पृष्टे उपवासा **षट्** ॥

मादसुदादिसजोणी चंडालीणं च जो (य) गच्छंतो ।
बत्तीसा उववासा दायव्वा सोहणट्ठाए ॥ ८४ ॥

मातृसुतादिस्वयोनीः चाण्डालीश्च यः गच्छन् ।
द्वात्रिंशदुपवासा. दातव्याः शोधनार्थम् ॥

अस्या अर्थः—माता दुहिता चाण्डालिका ताभि सह गमनं स्वप्ने तदा **प्राय-श्चित्तं** द्वात्रिंशदुपवासा· ॥

कारुयपत्तम्मि पुणो भुत्ते पीदे वि तत्थ मलहरणं ।
पंचुववासा णियमा णिद्दिट्ठा छेदकुसलेहिं ॥ ८५ ॥

कारुकपात्रे पुनः भुक्ते पीतेऽपि तत्र मलहरणं ।
पंचोपवासा नियमात् निर्दिष्टाः छेदकुशलैः ॥

अस्या अर्थ—कारुणा गृहे यदा खान पान तदा पंचोपवासा भवन्ति ॥

लोइयसूरत्तविही जलाइपरदेसबालसण्णासे ।
मरिदे खणे ण सोही वद सहिदे चेव सागारे ॥ ८६ ॥

लौकिकशूरत्वविधिना जलादिपरदेशबालसन्यासेन ।
मृते क्षणे न शुद्धि व्रतसहिते चैव सागारे ॥

अस्या अर्थः—लौकिकशौर्येण मृते, पानीये नावादिप्रविष्टेन मृते, प्रवासेन मृते, बालमरणेन मृते, सन्यासेन मृते, व्रतसहिते श्रावके मृते सूतक नेति ॥

पण दस बारस णियमा पण्णरसएहिं तत्थ दिवसेहिं ।
खत्तियबंभणवइसा सुद्दाइ कमेण सुज्झति ॥ ८७ ॥

पञ्चभिः दशभि. द्वादशभिः नियमात् पञ्चदशभिः तत्र दिवसैः ।
क्षत्रियब्राह्मणवैश्या शूद्रा' क्रमेण शुद्ध्यन्ति ॥

काऊण य जिणपूया अहिसेवा तेण तस्स ण्हाणं च ।
उवयरणवत्थपुव्वं दायव्व चउव्विह दाणं ॥ ८८ ॥

कृत्वा च जिनपूजा अभिषेक तेन तस्य स्नान च ।
उपकरणवस्त्रपूर्वं दातव्य चतुर्विध दान ॥

अस्या अर्थ—प्रायश्चित्तानन्तर जिनपूजाभिषेका ततस्तेनैव जिनस्नानोदकेन आत्मस्नान करणीयं । ततस्तु उपकरणवस्त्रचतुर्विधं दान देयमिति ॥

तह य सुवण्णादीणं दायव्व इच्छियाण जहजोग्गं ।
सिरमुंडणं च कुज्जा लोयाण य चित्तगहणट्ठं ॥ ८९ ॥

तथा च सुवर्णादीना दातव्य इच्छिताना यथायोग्यं ।
शिरोमुडन च कुर्यात् लोकाना च चित्तग्रहणार्थं ॥

जावदिया परिणामा तावदिया होंति तत्थ अवराहा ।
पायच्छित्तं सक्कइ दादु कादु च को समए ॥ ९० ॥

यावन्तः परिणामा तावन्तो भवन्ति तत्रापराधाः ।
प्रायश्चित्त शक्नोति दातु कर्तु च कः समये ॥

अणुकंपा कहणेण य विरामवदसहण ''उवओगे ।
पादद्धतयं सव्वं पावइ कज्जं ण सदेहो ॥ ९१ ॥

अनुकम्पाकथनेन च········ · ·उपयोगे ।
पादार्धत्रय सर्वं प्राप्नोति कार्य न सन्देहः ॥

अस्या अर्थः—अनुकम्पा सचतुर्भागापहारो भवति । गुरुसकाशात् प्रकटीकृत्य श्रुतमात्रादेव सद्योऽर्ध तस्य नश्यति, पुरुषवदात्रिदोषात्रिभाग नश्यति । व्रतारोहणी गृहीत्वा प्रकर्षचारेण सर्वदोषाद्विरति ॥

पुव्वायरियकयाणि य आलोचित्ता मया समुद्दिट्ठा ।
जं आगमे विरुद्धं अवणिय पूरंतु छेदण्हू ॥ ९२ ॥

पूर्वाचार्यकृतानि च आलोच्य मया समुद्दिष्टानि ।
यदागमेन विरुद्ध अपनीय पूर्यन्तु छेदज्ञाः ॥

एव पायच्छित्तं चाउव्वण्णस्स सोहणट्ठाए ।
वुच्चइ छेदाणउदी णउदिगाहाहि णिद्दिट्ठं ॥ ९३ ॥

एवं प्रायश्चित्त चतुर्वर्णस्य शोधनार्थम् ।
वक्ति छेदनवति' नवतिगाथाभि. निर्दिष्टम् ॥

भविया जं अल्लीणा संसारमहोवहिं समुत्तरिउं ।
गच्छंति सिद्धिखेत्तं णंदउ जिणसासणं सुइरं ॥ ९४ ॥

भव्याः यदाश्रिताः ससारमहोदधिं समुत्तीर्य ।
गच्छन्ति सिद्धिक्षेत्रं नन्दतु जिनशासनं सुचिरं ॥

इति नवतिवृत्ति समाप्ता ।

श्रीगुरुदास-विरचिता

प्रायश्चित्त-चूलिका ।

श्रीनन्दिगुरुकृत-विवरणसहिता ।

प्रणम्य परमात्मान केवलं केवलेक्षणम् ।
मयातिधास्यते किंचिच्चूलिकाविनिबन्धनम् ॥ १ ॥

अथ तत्र तावदिष्टदेवतानमस्कारो निर्विघ्नार्थः शिष्टव्यवहारपरिपालनार्थश्च स्नयते,—

योगिभिर्योगगम्याय केवलायाविनाशिने ।
ज्ञानदर्शनरूपाय नमोस्तु परमात्मने ॥ १ ॥ इति ।

नमोऽस्तु—नमस्कारोऽस्तु नमस्कारो भवतु । कस्मै ? परमात्मने—आत्मा जीव उपयोगलक्षण., परम· प्रधान. संसारासारापारसागरसमुत्तीर्ण इत्यर्थः, स चासौ आत्मा च, परमात्मने नम । किंविशिष्टाय ? योगगम्याय—योगः समाधि शुभाशुभभावाभावस्वभाव. सम्यग्ज्ञ नमित्यर्थ., तेन गम्य इति योगगम्यो योगविषय इत्यर्थ. । कै ? योगिभिः—ध्यानिभिः । पुनरपि कथभूताय ? केवलाय—शुद्धाय निष्कलायेति यावत् । अविनाशिने—अव्ययाय । पुनरपि कथभूताय ? ज्ञानदर्शनरूपाय—ज्ञानं केवलज्ञानं, दर्शनं केवलदर्शनं, ज्ञानदर्शनमेव रूपं स्वरूपं यस्य स ज्ञानदर्शनरूपः, तदविनाभावादनन्तवीर्यानन्तसौख्यादीना तदन्तर्भावः । एवंविधमतीतानागतवर्तमानकालगोचर सामान्यापेक्षयैकं सिद्धपरमेष्ठिनं प्रणम्य पूर्वं, तदनन्तरं प्रायश्चित्तचूलिका विधियते ॥ १ ॥

मूलोत्तरगुणेष्वीषद्विशेषव्यवहारतः ।
साधूपासकसंशुद्धिं वक्ष्ये संक्षिप्य तद्यथा ॥ २ ॥

मूलोत्तरगुणेषु—मूलोत्तरविशेषेषु, मूलगुणा द्विविधा यतीनां श्रावकाणां च, तत्र यतिमूला अष्टाविंशतिः अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहादय.। श्रावकाणां मूलगुणा विविधा अष्टौ मद्यमासमधुपचोदुम्बरपरित्यागाः। उत्तरगुणा यतीनामनेकविकल्पा आतापनतोरणस्थानमौनादयः। श्रावकाणामुत्तरगुणाः सामायिकप्रोषधोपवासप्रभृतयस्तेषु विषये तान् प्रति। ईषत्—मनाक् किंचित् स्तोक। विशेषव्यवहारतः—विशेषव्यवहारात् विशेषप्रायश्चित्तशास्त्रेभ्यः सकाशात्। साधूपासकसशुद्धि—साधूनां यतीनां, उपासकाना श्रावकाणां, संशुद्धि विशुद्धि प्रायश्चित्त। वक्ष्ये—कथयिष्ये। संक्षिप्य–समासत। तद्यथा—भवति, तथा कथ्यते ॥ २ ॥

> एकेन्द्रियादिजन्तूनां हृषीकगणनाद्वधे।
> चतुरिन्द्रियकुद्धाना प्रत्येकं तनुसर्जनम् ॥ ३ ॥

एकेन्द्रिया पंचप्रकारा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिका (वनस्पतिकायिकाः) द्विभेदा. प्रत्येकवनस्पतयोऽनन्तकायवनस्पतयश्चेति। तत्र प्रत्येककायिका एकजीवस्यैकशरीर ते च पूगफलनालिकेरादय। अनन्तकायिका अनन्तजीवानामेकशरीरं तेऽपि गुडूचीसूरणादय। आदिशब्देन द्वीन्द्रिया शम्बशुक्त्यादयः, त्रीन्द्रिया. कुन्थुपिपीलिकाप्रभृतयः, चतुरिन्द्रिया भ्रमरमक्षिकाप्रमुखाः, पचेन्द्रिया मनुष्यमत्स्यमकरोरगादयः। तेषां जन्तूनां जीवाना वधे। हृषीकगणनात्—इन्द्रियसंख्यया प्रायश्चित्त भवति। वधे—विनाशे मारणे च सति। चतुरिन्द्रियकुद्धाना—चतुरिन्द्रियपर्यन्तानां। प्रत्येक—यथासंख्य। तनुसर्जनं—तनु. शरीर पचप्रकार औदारिकं, वैक्रियिकं, आहारकं, तैजसं, कार्मणमिति, तस्याः पंचप्रकाराया अपि तनोरुत्सर्जनं परित्यजनं मूर्च्छाममत्वाभावः तनूत्सर्जनं कायोत्सर्ग इत्यर्थः। स च शुद्धोपयोगलक्षणं विशुद्धात्मरूपं विश्वात्मकं लोकालोकावभासिनं परमात्मानमेव निर्जरार्थी. ध्यायतः साधुर्भवति। पंचेन्द्रियाणामग्रतः प्रायश्चित्तं वक्ष्यति ॥ ३ ॥

उत्तरमूलसंस्थेषु प्रमादाद्दर्पतश्छिदा ।
कायोत्सर्गोपवासाः स्युरिन्द्रियप्राणसंख्यया ॥ ४ ॥

उत्तरमूलसंस्थेषु—उत्तरमूलगुणाऽऽस्थितेषु । प्रमादात्—यत्ने कृतेऽपि जीववधे सति । दर्पात्—अप्रयत्नाद्धेतोः । छिदा—छेदः प्रायश्चित्तं । कायोत्सर्गोपवासाः—कायोत्सर्गा उपवासाश्च । स्युः—भवेयुः । इन्द्रियप्राण-संख्यया—इन्द्रियप्राणगणनया । तत्र तावदिन्द्रियाणि निगद्यन्ते—एकेन्द्रियाणां पंचानामपि प्रत्येकमेकमेकेन्द्रियं स्पर्शनम् । द्वीन्द्रियस्य जन्तोः द्वे इन्द्रिये स्पर्शनं रसनं च । त्रीन्द्रियस्य त्रीणीन्द्रियाणि स्पर्शनं रसनं घ्राणं च । चतुरिन्द्रियाणां चत्वारि स्पर्शनं रसनं घ्राणं चक्षुश्च । पंचेन्द्रियस्य पंचेन्द्रियाणि स्पर्शनं रसनं घ्राणं चक्षुः श्रोत्रं चेति । प्राणाश्चत्वारो भवन्ति इन्द्रियप्राणबलोच्छ्वासनिश्वासप्राणायुःप्राणा इति । तत्रेन्द्रियप्राणः पंचप्रकारः प्रागुक्त एव । बलप्राणस्त्रिविधः मनोबलं वचनबलं कायबलमिति । एते सर्वे दश प्राणा भवन्ति । उक्तं च—

> पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च सोच्छ्वासनिश्वासयुतास्तथायुः ॥
> प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोगीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ इति ।

एकेन्द्रियस्य चत्वारः प्राणाः स्पर्शनेन्द्रियं, कायबलं, उच्छ्वासनिश्वास-प्राणः, आयुरिति । द्वीन्द्रियस्य षट् प्राणा भवन्ति स्पर्शनरसनमिति द्वे इन्द्रिये, कायबलं, वाग्बलं, उच्छ्वासनिश्वासप्राणः, आयुरिति । त्रीन्द्रियस्य सप्त प्राणा भवन्ति पूर्वोक्ता एव षट् घ्राणेन्द्रियाधिकाः । चतुरिन्द्रियस्याष्टौ प्राणाः पूर्वोक्ताः सप्त चक्षुरिन्द्रियाभ्यधिकाः । असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य नव प्राणा भवन्ति प्रागुद्दिष्टा अष्ट श्रोत्रेन्द्रियाभ्यधिकाः । संज्ञिपंचेन्द्रियस्य दश प्राणाः प्रागुद्दिष्टा नव मनोबलालिंगिता इति । तत्रेन्द्रियप्राणगणनयोच्यते— उत्तरगुणधारिणः प्रयत्नवतः इन्द्रियप्राणगणनया कायोत्सर्गा भवन्ति । स्थिरस्येन्द्रियगणनया कायोत्सर्गा भवन्ति—एकेन्द्रियस्य वधे एकः कायोत्सर्गः, द्वीन्द्रिये द्वौ कायोत्सर्गौ, त्रीन्द्रिये त्रयः कायोत्सर्गाः,

चतुरिन्द्रिये चत्वारः, पंचेन्द्रिये पंच । अस्थिरस्य प्राणगणनया कायोत्सर्गाः सन्ति—एकेन्द्रियस्य वधे चत्वारः कायोत्सर्गाः, द्वीन्द्रिये षट्, त्रीन्द्रिये सप्त, चतुरिन्द्रियेऽष्टौ, असंज्ञिपंचेन्द्रिये नव, संज्ञिपंचेन्द्रिये दश कायोत्सर्गाः भवन्ति । अप्रयत्नवतस्थिरस्येन्द्रियगणनया कायोत्सर्गाः उपवासाः । अस्थिरस्य प्राणगणनया कायोत्सर्गा उपवासा भवन्ति । मूलगुणधारिणः प्रयत्नचारिणः स्थिरस्येन्द्रियगणनया कायोत्सर्गाः, अस्थिरस्य प्राणगणनया भवन्ति । अप्रयत्नचेष्टस्य स्थिरस्येन्द्रियगणनया कायोत्सर्गा· उपवासा. । अस्थिरस्य प्राणगणनयोपवासा भवन्ति ॥ ४ ॥

अथवा यत्न्ययत्नेषु हृषीकप्राणसंख्यया ।
कायोत्सर्गा भवन्तीह क्षमणं द्वादशादिभि· ॥ ५ ॥

अथवा—अन्यमतेन । यत्न्ययत्नेषु—यत्निष्वप्रयत्नवत्सु [प्रयत्नेषु] पुरुषेषु प्रत्येक । हृषीकप्राणसख्यया—इन्द्रियप्राणगणनया प्रायश्चित्त, (प्रयत्नपरेषु इन्द्रियगणनया) अप्रयत्नपरेषु प्राणगणनया कायोत्सर्गा.—। भवन्ति—सन्ति । इह—अस्मिन् शास्त्रे । क्षमणं—उपवासस्तु । द्वादशादिभिः—द्वादशप्रभृतिभिरेकेन्द्रियादिभिर्भवति । द्वादशभिरेकेन्द्रियैरेक उपवास. । षड्भिः द्वीन्द्रियैरुपवास. । चतुर्भिस्त्रीन्द्रियैरुपवासः । त्रिभिश्चतुरिन्द्रियैरुपवास इति ॥ ५ ॥

षट्त्रिंशन्मिश्रभावार्कग्रहैकेषु प्रतिक्रम. ।
एकद्वित्रिचतु.पचहृषीकेषु स षष्ठयुक् ॥ ६ ॥

षट्त्रिंशन्मिश्रभावार्कग्रहैकेषु—मिश्रभावा अष्टादश ज्ञानदर्शनादयः, अर्काः द्वादश, ग्रहा नव तेषु षट्त्रिंश [त्स] दादिषु । प्रतिक्रमः—प्रतिक्रमणं उपस्थान । एकद्वित्रिचतु पंचहृषीकेषु—एकेन्द्रियादिषु, एकस्मिन् पंचेन्द्रिये प्रत्येकं सः । षट्त्रिंशत्सु एकेन्द्रियेषु अष्टादशसु द्वीन्द्रियेषु द्वादशसु त्रीन्द्रियेषु नवसु चतुरिन्द्रियेषु एकस्मिन् पंचद्रिये प्रत्येकं । सः—पूर्वोपदिष्टः प्रतिक्रमः प्रायश्चित्त भवति । षष्ठयुक्—षष्ठेन द्वाभ्यां निरन्तराभ्यां उपवासाभ्यां युतः समान्वितः । उक्तं चान्यैः—

वारसमाई काउं चउआलस अतु जाव विस्सें तु ।[१]
नियमेण पुव्वोच्छे उवरि पडिकमेण पुव्वं तु ॥ इति ।

निष्प्रमादः प्रमादी च प्रत्येकं स स्थिरोऽस्थिरः ।
मूलधार्युत्तराधारस्तस्यासंज्ञिविघातिन ॥ ७ ॥

निष्प्रमाद.—प्रमादः सज्वलनतीव्रोदयः प्रमादान्निष्क्रान्तो निष्प्रमादः । प्रमादो यस्यास्तीति प्रमादी । प्रत्येक—एकं एक प्रति । स—निष्प्रमादः प्रमादी च । स्थिरः—लब्धप्रतिष्ठ , अपरोऽपि, अस्थिरश्च परश्च (स्व) भाव इति निष्प्रमादो द्विभेदभिन्नो भवति । प्रमादी च द्विभेद. । एव चतुष्प्रकारो मूलधारी—मूलगुणधारी भवति । उत्तराधार—उत्तरगुणोपपन्नोऽपि चतुर्विधो भवति । तस्य—पूर्वाभिहितस्य मूलगुणधारिण उत्तरगुण धारिणश्च । असंज्ञिविघातिनः—असंज्ञिपचेंद्रियोपमर्दिनः प्रायश्चित्तमुपरि वक्ष्यते ॥ ७ ॥

उपवासास्त्रयः षष्ठं षष्ठं मासो लघु सकृत् ।
कल्याणं त्रिचतुर्थानि कल्याणं षष्ठकं क्रमात् ॥ ८ ॥

उपवासा.—क्षमणानि, त्रय. भवन्ति । षष्ठ—द्वौ उपवासौ । पुनः षष्ठ । मासो लघु —लघुमासः । सकृत्-एकवारं । कल्याण—पचकं । त्रिचतुर्थानि—त्रीणि चतुर्थानि त्रय उपवासा इत्यर्थ. । पुनः कल्याणपचकं । षष्ठं । क्रमात्—क्रमेण । एतानि प्रायश्चित्तानि मूलोत्तरगुणधारिण सकृदसंज्ञिपंचेन्द्रिये हते सति यथासंख्य भवन्ति ॥ ८ ॥

षष्ठं मासो लघुर्मूलं मूलच्छेदोऽसकृत्पुनः ।
उपवासास्त्रयः षष्ठं लघुमासोऽथ मासिकम् ॥ ९ ॥

षष्ठं—षष्ठप्रायश्चित्तं । मासो लघुः—लघुमासः । मूलं—मासिक । मूलच्छेदः—पुनरपि मासिकप्रायश्चित्तं । असकृत्पुनः—अनेकवारं तु । उपवासास्त्रयः—त्रीणि क्षमणानि । षष्ठं—षष्ठप्रायश्चित्तं । लघुमासः—लघुमास-

प्रायश्चित्तं । अथ-अनन्तरं । मासिकं—पंचकल्याण । एतच्चासकृदसंज्ञिपंचे-न्द्रियस्य वधे कृते सति तयोरेव यथासंख्यं प्रायश्चित्त भवति ॥ ९ ॥

एतत्सान्तरमाम्नातं संज्ञिनि स्यान्निरन्तरम् ।
तीव्रमंदादिकान् भावानवगम्य प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

एतत्—अदः प्रागुक्तं प्रायश्चित्त । सान्तरं—सव्यवधानं व्याधिप्रभृति-कारणसमागमे सत्याचार्यानुज्ञया विश्रम्यापि क्रियते इति सान्तरं । आम्नातं—अभिहित । संज्ञिनि स्यान्निरन्तर—सज्ञी शिक्षाक्रियालाप-ग्राही तस्मिन् निहते सति, स्याद्भवेत, निरन्तर यदसंज्ञिपचेन्द्रियोद्दिष्टं प्रायश्चित्त संज्ञिपंचेन्द्रिये तदेव निरन्तरं व्यवधानविवर्जित भवति । तीव्रमदादिकान् भावान्—भावा' परिणामः स च त्रिविधो भवति शुभाशुभ-विशुद्धविशेषात् । तत्र शुभ पुण्योपचयहेतु । अशुभः पापोपचयकारणं द्वेषात्मपरिणामोऽशुभः । रागरूप शुभोऽपि भवत्यशुभश्च । विशुद्धोऽनुभयात्मकः । स पक्षकस्तेन्यस्ताना ? भवति । तत्राशुभो भावास्त्रिविध-तीव्रो मन्दो मध्य इति । तत्र चाशुभस्तीव्रः कृष्णलेश्यो, मध्यमो नीललेश्यो, मन्द कपोतलेश्य इति । शुभोऽपि त्रिभेदभिन्नो भवति । तत्र शुभो मंदस्ते-जोलेश्यः, मध्यम. पद्मलेश्यः, तीव्र. शुक्ललेश्यः । पुनस्तीव्रादयो भावास्ती-व्रतरतीव्रतमभेदविशेषविशिष्टा भवंति । पुनस्तेऽपि प्रत्येक त्रिविधाः । एवं शुभभावाश्च तावद्यावदसंख्येया लोका इति । एवमेतान् । अवगम्य —ज्ञात्वा । प्रयोजयेत्—प्रायश्चित्तं सम्बन्धयेत् ॥ १० ॥

साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां घातने क्रमात् ।
यावद्द्वादशमासाः स्यात् षष्ठमर्धार्धहानियुक् ॥ ११ ॥

साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां—साधुर्यती रत्नत्रयधारी, उपासकः संयतासं-यतः, बालः शिशुः, स्त्री योषिन्महिला, धेनुर्गौः तासां । घातने—व्यापादने । क्रमात्—यथाक्रमेण । यावद्द्वादशमासाः—द्वादशमासा यावत् । स्यात्—

भवेत् । षष्ठं—षष्ठोपवासः । ऋषिहत्यायां सत्यां द्वादशमासा यावत् षष्ठेन षष्ठेन कृत्वा पारणं प्रायश्चित्त भवति । अर्धार्धहानियुक्— अर्धार्धहानियुतं ततस्तदेव षष्ठमर्धार्धहानियुक्तं भवति । श्रावकस्य घाते कृते सति षण्मासाः षष्ठेन षष्ठेन पारण । बालस्य घाते सति त्रयो मासाः षष्ठेन षष्ठेन पारण । स्त्रीघाते सार्धो मास षष्ठेन षष्ठेन पारणं । गोघाते त्रयोविंशतिदिवसाः षष्ठेन षष्ठेन पारणाप्रायश्चित्त भवति ॥ ११ ॥

पाषंडिनां च तद्भक्ततद्योनीनां विघातने ।
आषण्मास भवेत्षष्ठं तदर्धार्ध तत परम् ॥ १२ ॥

पाषडिना——अन्यलिंगिना भौतिकभिक्षुपरिव्राट्कापालिकादीना । तद्भक्तयोनीना——तेषा पाषण्डिना ये भक्ता उपसेविन. माहेश्वरादयस्तेषा, तद्योनीना माहेश्वरादीना योनीना योनिभूताना स्वजनानामित्यर्थ. तेषा च । घातेने सति । आषण्मास भवेत् षष्ठ——पाषण्डिघाते सति आषण्मासं यावत्, षष्ठ षष्ठप्रायश्चित्त भवति । तदर्धार्ध तत पर——तस्य षण्मासषष्ठस्य यथागममर्धार्धं, तत परं तदनन्तरं भवति । तद्भक्तवधे त्रयो मासाः षष्ठप्रायश्चित्त भवति । (तद्योनिवधे सार्धो मासः षष्ठप्रायश्चित्त भवति)॥ १२ ॥

ब्राम्हणक्षत्रविट्छूद्रचतुष्पदविघातिनः ।
एकान्तराष्टमासा स्युः षष्ठाद्यन्ताश्च पूर्ववत् ॥ १३ ॥

ब्राह्मणक्षत्रविट्छूद्रचतुष्पदविघातिन —ब्राह्मणा. लौकिका विप्रा, क्षत्राः क्षत्रियाः, विशो वैश्या , शूद्रास्तत्प्रेषणकारिण तक्षार्भारकुम्भकारादयः चतुष्पदास्तान् विहन्तीत्येव शीलस्तद्विघाती । अथवा तद्विघातोऽस्यास्तीति तद्विघाती तस्य ब्राह्मणक्षत्रविट्छूद्रचतुष्पदविघातिनः साधो । एकान्तराष्टमासा.——एकान्तरेण एकान्तरोपवासेन, अष्टमासाः अष्टौ त्रिंशद्रात्रा । स्युः——भवेयु. । षष्ठाद्यन्ता ——षष्ठाद्या षष्ठान्ताश्च आद्यावन्ते च षष्ठ भवतीत्ययमर्थ. । पूर्ववत्—अर्धार्धहानित । लौकिकब्राह्मणघाते कथंचि-

त्संपन्ने षष्ठाद्यन्ता अष्टमासा एकान्तरोपवासेन प्रायश्चित्तं भवति । क्षत्रियघाते चत्वारो मासाः । वैश्यघाते द्वौ मासौ । शूद्रघाते मासः । चतुष्पद्विघाते सत्यर्धमासो भवति ॥ १३ ॥

तृणमांसात्पतत्सर्पपरिसर्पजलौकसाम् ।
चतुर्दशनवाद्यन्तक्षमणानि वधे छिदा ॥ १४ ॥

तृणमांसात्पतत्सर्पपरिसर्पजलौकसां—तृणात् तृणचरः, मासात् मांसाशी, पतत् पक्षी, सर्पो विषधरः, परिसर्पः गोधेरादि., जलौकसो जलचरास्तेषां घाते सति । चतुर्दशनवाद्यन्तक्षमणानि—चतुर्दशादीनि नवान्तानि क्षमणानि उपवासा । वधे—घाते । छिदा—छेदः प्रायश्चित्तं भवति । तृणचरस्य मृगशशकरोझादेर्विघाते चतुर्दशोपवासा भवन्ति । मांसाशिनः सिंहव्याघ्रचित्रकादेर्विघाते त्रयोदश उपवासा । तित्तिरिमयूरकुर्कटपारापतादिपक्षिविशेषविघाते द्वादशोपवासाः । सर्पगौनसादो सर्पजातिव्यापादने एकादशोपवासा । गोधेरककृकलासादिपरिसर्पविनाशे दशोपवासा. । मकरशिशुमारमत्स्यकच्छपादीना विनाशने नवोपवासा सन्ति ॥ १४ ॥

प्रथम व्रतम्

प्रत्यक्षे च परोक्षे च द्वयेऽपि च त्रिधानृते ।
कायोत्सर्गोपवासा स्युः सकृदेकैकवर्धनात् ॥ १५ ॥

प्रत्यक्षे च—व्यक्तं । परोक्षे—असमक्षं च । तद्द्वयेऽपि—प्रत्यक्षे परोक्षे च । त्रिधा—मनसा, वचसा, कायेन च । अनृते—असत्यभाषणे कृते सति । कायोत्सर्गोपवासा —कायोत्सर्गा उपवासाश्च प्रायश्चित्तं । स्यु—भवेयुः । सकृत्—एकवार । एकैकवर्धनात्—एकोत्तरवृद्ध्या । च शब्दोऽनकृष्टे समुच्चयार्थः । तेन सप्रतिक्रमणाः कायोत्सर्गोपवासाः सन्ति । प्रत्यक्षमृषा-

१ द्विरुक्तोयं शब्द पुस्तके ।

वादे एकः कायोत्सर्ग उपवासश्च प्रतिक्रमणः। परोक्षे मृषावादे द्वौ कायोत्सर्गोपवासौ च प्रतिक्रमणे। उभयस्मिन् मृषावादे त्रयः कायोत्सर्गा उपवासाश्च प्रतिक्रमणः (णाः)। त्रिधामृषावादे चत्वारः कायोत्सर्गाः उपवासाश्च प्रतिक्रमणपुरस्सरा भवन्ति एकवागम॥ १५॥

असकृन्मासिक साधोरसद्दोषाभिभाषिणः।
कषायादभियुक्तस्य परैर्वा द्विगुणादि तत्॥ १६॥

असकृन्मासिक—अनृत इति वर्तते तेन असकृदनेकवारमनृते सति मासिक पचकल्याण प्रायश्चित्त भवति। साधोरसद्दोषाभिभाषिणः—साधोर्यतेः सबन्धिन, असतोऽविद्यमानस्य, दोषस्यापराधस्य, यः कश्चिन्मुनिरभिभाषणशीलस्तस्य। कषायात्—क्रोधमानमायालोभैर्हेतुभूतैः। अभियुक्तस्य परैर्वा—परैरन्यैर्वा समापस्थितै, अभियुक्तस्य प्रेरितस्य सतः। द्विगुणादि तत्—पूर्वोक्त प्रायश्चित्त कायोत्सर्गादिमासिकपर्यन्तं द्विगुणादि भवति द्विगुण त्रिगुणं चतुर्गुण पचगुणं अधिकगुण च वापि देयम्॥ १६॥

नीचः पैशून्ययुष्टस्य गच्छाद्देशाद्बहिष्कृतिः।
तच्छ्रुत्वा मन्यमानोऽपि दोषपादांशमश्नुते॥ १७॥

नीचः—पृथग्भूतस्य निकृष्टस्य। पैशून्ययुष्टस्य—पिशुनो दुर्जनः तस्य भावः पैशून्य तेन युष्टस्य सेवितस्योपहतस्य सतः। गच्छात्—गणात्। देशात्—विषयाच्च। बहिष्कृतिः—बहिष्करणमुद्वासनं प्रायश्चित्तं भवति॥ तच्छ्रुत्वा—तत्साधोः सम्बन्धि पैशुन्यं श्रुत्वा आकर्ण्य। मन्यमानोऽपि—मन्वानश्च मुनिः। दोषपादांशं—तद्दोषचतुर्भागं। अश्नुते—लभते॥ १७॥

द्वितीय व्रतम्

सकृच्छून्ये समक्षं चानाभोगेऽवृत्तसंग्रहे।
कायोत्सर्गोपवासाः स्युः प्राग्वन्मूलगुणोऽसकृत्॥ १८॥

सकृत्—एकवारं । शून्ये—विजने । समक्षं—सपक्षाणां प्रत्यक्षं । अनाभोगे—[illegible]नामपरिपश्यतां विशेषवतः पदार्थस्य । अदत्त-ग्रहे—अवितीर्णग्रहणे सति । कायोत्सर्गोपवासाः—कायोत्सर्गा उपवासाश्च । स्युः—भवेयुः । प्रागवत्—पूर्ववत् एकोत्तरवृद्ध्या इत्यर्थः । चशब्दात्प्रतिक्रमणपुरस्सराः कायोत्सर्गोपवासाः सन्ति । शून्येऽदत्तादाने एकः कायोत्सर्ग उपवासश्च सप्रतिक्रमणः । प्रत्यक्षमदत्तादाने सति द्वौ कायोत्सर्गौ द्वावुपवासौ सप्रतिक्रमणौ सुवर्णहिरण्यादौ तु मूलगुणप्रायश्चित्त भवति । मूलगुणोऽसकृत्—असकृदनेकवार अदत्तादाने मूलगुण. पचककल्याणं स्यात् ॥ १८ ॥

आचार्यस्योपधेरर्हा विनेयास्तान् विना पुनः ।
सधर्माणोऽथ गच्छश्च शेषसंघोऽपि च क्रमात् ॥ १९ ॥

आचार्यस्य—गणिनः । उपधेः—पुस्तकाद्युपकरणस्य । अर्हाः—योग्याः । विनेयाः—तच्छिष्या. । तान् विना पुन.—शिष्यैर्विना तु । सधर्माणः—गुरुभ्रातरः अर्हाः । अथ—अनन्तरं सधर्मणो विना । गच्छः—स्वगणोऽपि त्रिपुरुषान्वयोऽपि अर्ह. । गच्छं विना, शेषसंघोऽपि च—शेषोऽवशिष्टः संघश्च सप्तपुरुषान्वयोऽपि योग्यः । क्रमात्—क्रमेण यथान्यायं यथाक्रमं परिपाट्या ॥ १९ ॥

सर्वे स्वामिवितीर्णस्य योग्यो ज्ञानोपधेरपि ।
स्वामिना वा वितीर्येत यस्मै सोऽपि तमर्हति ॥ २० ॥

सर्वे—निरवशेषाः साधवः शिष्यादयोऽन्यसम्बन्धिनोऽपि । स्वामिवितीर्णस्य—उपकरणस्य, प्रभुणा प्रवितीर्णस्योपकरणस्य अर्हा भवन्ति । योग्यो ज्ञानोपधेरपि—ज्ञानोपधेः पुस्तकस्य तु योग्यः य एव योग्यो ज्ञानी स एवार्हः । स्वामिना वा वितीर्येत यस्मै—वा अथवा, स्वामिना पुस्तकपतिना, यस्मै साधवे, वितीर्येत दीयते । सोऽपि—स च । तं—ज्ञानोपधिं । अर्हति—भजति गृह्णाति ॥ २० ॥

एवंविधिं समुल्लंघ्य यः प्रवर्तेत मूढधीः ।
बलवन्तं समासृत्य यो वादत्ते प्रदोषतः ॥ २१ ॥

एवंविधिं—एवभूता व्यवस्था । समुल्लघ्य—अतिक्रम्य । यः—कश्चित् साधुः । प्रवर्तेत—प्रवर्तते चेष्टते । मूढधी.—मूढबुद्धिः । बलवन्तं समासृत्य यो वादत्ते—वा अथवा, यो यतिः, बलवन्त बालिनं नरेन्द्रादिकं, समासृत्य उपपद्य, आदत्ते गृह्णाति उपकरण । प्रदोषत —प्रदोषात् प्रद्वेषात्, तस्य वक्ष्यमाणो दण्ड ॥ २१ ॥

सर्वस्वहरण तस्य षण्मास क्षमण भवेत् ।
योऽन्यथापि तमादत्ते तस्य तन्मौनसंयुतं ॥ २२

तस्य—तस्यान्यायविधायिन. । सर्वस्वरहण—निरवशेषपुस्तकाद्युपकरणापहारो दण्ड. । षण्मासः क्षमण—षण्मासान् यावदेकान्तरोपवासश्च । भवेत्—स्यात् । योऽन्यथापि तमादत्ते—य. साधुः, अन्यथापि अन्येनापि केनचित्प्रकारान्तरेण, तमुपधिं, आदत्ते गृह्णाति । तस्य—साधो. । तत्—तदेव प्रागभिहित षण्मासक्षमण प्रायश्चित्तं भवति । मौनसंयुतं—मौनेन समन्वितम् ॥ २२ ॥

तृतीय व्रतम् ।

क्रियात्रये कृते दृष्टे दु.स्वप्ने रजनीमुखे ।
सोपस्थानं चतुर्थं नि-यमाभुक्तौ प्रतिक्रमः ॥ २३ ॥

क्रियात्रये–स्वाध्यायनियमवदनाकरणत्रितये । कृते—सति, विहिते सति । दृष्टे—विलोकिते । दु.स्वप्ने—रेतश्च्युतौ सतीत्यर्थ. । रजनीमुखे—प्रदोषसमये । सोपस्थान चतुर्थं–सोपस्थान सप्रतिक्रमण, चतुर्थमुपवासः । नियमाभुक्तौ नियमो लघुप्रतिक्रमणं, अभुक्तिरुपवासः । प्रतिक्रमः—अयं प्रतिक्रमो नियम इति ग्राह्यः । रात्रेः प्रथमभागे स्वाध्यायाद्यन्यतरक्रियां

विधाय सुप्तस्य दुःस्वप्ने सति सप्रतिक्रमणोपवासः प्रायश्चित्तं भवति। क्रियाद्वयं विधाय सुप्तस्य दुःस्वप्ने सति नियमोपवासौ भवतः। क्रियात्रयमपि कृत्वा प्रसुप्तस्य सतः दुःस्वप्ने सति नियमः प्रायश्चित्तं भवतीति यथाक्रमं योज्यम् ॥ २३ ॥

नियमक्षमणे स्यातामुपवासप्रतिक्रमौ।
रजन्या विरहे तु स्तः क्रमात् षष्ठप्रतिक्रमौ ॥ २४ ॥

नियमक्षमणे—नियमोपवासौ। स्याता—भवेता। उपवासप्रतिक्रमौ—उपवासप्रतिक्रमणौ। रजन्या विरहे तु—रात्रेः पश्चिमप्रहरे पुनः। स्तः—भवत.। क्रमात्—क्रमेण यथासंख्यं। षष्ठप्रतिक्रमौ—षष्ठप्रतिक्रमणौ। रात्रेश्चरमप्रहरे एका क्रिया विधाय संसुप्तस्य दुःस्वप्ने सति नियमोपवासौ प्रायश्चित्त। क्रियाद्वय विधाय शयितस्य दु.स्वप्ने सति उपवासेन सह प्रतिक्रमणो भवति। (क्रियात्रयं विधाय शयितस्य दु.स्वप्ने सति सप्रतिक्रमणं षष्ठ प्रायश्चित्तं भवति) ॥ २४ ॥

मद्यमांसमधु स्वप्ने मैथुन वा निषेवते।
उपवासोऽस्य दातव्य. सोपस्थानश्च चेद्बहु ॥ २५ ॥

मद्यमासमधु—मद्य सुरा, मास पिशितं, मधु माक्षिक। स्वप्ने—निद्रायां। मैथुनं वा—अब्रह्म वा। निषेवते—यद्यनुभवति। तदानी, उपवासोऽस्य दातव्य·—उपवास प्रायश्चित्त, अस्य एतस्य साधो., दातव्यो देयः। सोपस्थानश्च—प्रतिक्रमणायोपलक्षितो भवति। चेद्बहु—यदि मद्यमास-मैथुनादि बहु निषेवितं भवति ॥ २५ ॥

तरुण्या तरुण कुर्यात्कथालापं सकृद्यदि।
उपवासोऽस्य दातव्योऽसकृत् षण्मासपश्चिमः ॥ २६ ॥

---

१ नायकसस्थ पाठ पुस्तके अर्थानुसारित्वात् स्वबुद्ध्या परिकल्प्य मयोजित·। पश्यतु छेदपिण्डस्य ५७–५८ गाथाद्वयं।

तरुण्या—स्त्रिया सह। तरुणो—युवा यतिः। कुर्यात्—करोति। कथालाप— कथा वाक्यप्रबंधं, आलापं सामान्यवचनं। सकृत्—एकवारं। यदि—चेत् कथंचित्। उपवासोऽस्य दातव्यः—उपवासः प्रायश्चित्तं, अस्य एतस्य स्त्रीकथालापकारिण, दातव्यो देय। असकृत्—अनेकवारं। यदि स्त्रीभिः सह कथालापं करोति तदा स एवोपवास.। षण्मासपश्चिमः—षण्मासावधिर्भवति ॥ २६ ॥

स्त्रीजनेन कथालापं गुरूनुल्लंघ्य कुर्वतः।
स्यादेकादि प्रदातव्यं षष्ठं षण्मासपश्चिमं ॥ २७ ॥

स्त्रीजनेन कथालापं—स्त्रीजनेन योषिन्निवहेन सह, कथालापं रहस्यादि समुल्लापं। गुरूनुल्लंघ्य—आचार्योपाध्यायादिभिर्विनिवारितस्यापि। कुर्वतो—विदधानस्य। स्यात्—भवेत्। एकादि प्रदातव्यं षष्ठ—एकषष्ठादि प्रायश्चित्त प्रदातव्य। षण्मासपश्चिम—षण्मासावधि ॥ २७ ॥

स्त्रीजनेन कथालापं गुरूनुल्लंघ्य कुर्वत.।
त्याग एवास्य कर्तव्यो जिनशासनदूषिणः ॥ २८ ॥

स्त्रीजनेन—महिलासमूहेन। कथालापं—गुह्यकथासमुल्लापं। गुरून—आचार्यादीन्। उल्लंघ्य—अतिक्रम्य। कुर्वतो—विदधतः। त्याग एवास्य कर्तव्य—अस्य निरंकुशस्य त्याग एव उद्वासनमेव कर्तव्यो विधेय.। जिनशासनदूषिण सर्वज्ञाज्ञाकलङ्ककारिण. ॥ २८ ॥

स्थातुकाम. स चेद्भूयस्तिष्ठेत्क्रमणमौनतः।
आषण्मासमयः कालो गुरूद्दिष्टावधिर्भवेत् ॥ २९ ॥

स्थातुकाम—स्थातुमनाः। सः—पूर्वोक्तः। चेत् (?)। समयः (?)। गुरूद्दिष्टावधि.—आचार्योपदिष्टमर्यादः। भवेत्—स्यात्। यावन्तं कालं आचार्योऽभीच्छति तावान् कालो भवति ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा योषामुखाद्यङ्गं यस्य कामः प्रकुप्यति ।
आलोचना तनूत्सर्गस्तस्य च्छेदो भवेदयम् ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा—अवलोक्य । योषामुखाद्यङ्ग–स्त्रीवदनाद्यवयवं । यस्य—कस्यचिन्मन्दभाग्यस्य । कामो—ऽभिलाष. । प्रकुप्यति—उत्कोचमायाति । आलोचना—गुरुभ्यः स्वदोषविनिवेदन । तनूत्सर्गः–कायोत्सर्गः । तस्य–प्रागुक्तस्य साधोः । छेदः—प्रायश्चित्त । भवेत्–स्यात् । अय–एष. ॥ ३० ॥

स्त्रीगुह्यालोकिनो वृष्यरससंसेविनो भवेत् ।
रसानां हि परित्याग. स्वाध्यायोऽचित्तरोधिन. ॥ ३१ ॥

स्त्रीगुह्यालोकिन –स्त्रीणां गुह्यादे· योनिप्रभृत्यवयवस्यालोकनशीलस्य लिंगिनः । वृष्यरससंसेविन· वृषाणीन्द्रियाणि तेभ्यो हिता बलोपचयाविधायिनो वृष्यास्ते च ते रसाश्च वृष्यरसास्तान् संसेवते इत्येवं शीलः वृष्यरससंसेवी तस्य च । भवेत्—स्यात् । रसाना—दधिदुग्धशाल्योदनघृतपूरादीनामिन्द्रियबलवर्धनाना । हि—स्फुट । परित्याग.—परिवर्जनं प्रायश्चित्तं भवति । स्वाध्यायोऽचित्तरोधिन.–स्वाध्यायोऽपराजितादिपरममंत्रपदजप. परमागमाध्ययनं च सोऽयमनुचरतः स्वाध्यायो विशुद्धध्यानाधारभूतः प्रायश्चित्तं भवति प्रज्ञातिशयाध्यवसानविशुद्धिहेतुत्वात् । उक्तं च—

मन सदर्थाधिगमे प्रसक्तं वाक्यार्थयोगे नयने पदेषु ।
श्रुति श्रुतौ निश्चलविग्रहस्य ध्यानेऽपि चैकाग्र्यमिहापि तुल्यम् ॥१॥ इत्यादि ।

अचित्तरोधिनो मनोरोधविरहितस्य सतः साधो तत्वाभ्यास एव प्रायश्चित्त भवति ॥ ३१ ॥

चतुर्थम् ।

उपधेः स्थापनाल्लोभाद्दैन्याद्दानप्ररूढितः ।
संग्रहात् क्षमणं षष्ठमष्टमं मासमूलके ॥ ३२ ॥

उपधे·—गृहस्थोपकरणस्य । स्थापनात्—प्रणिधानात् । लोभात्—मूर्च्छायाः । दैन्यात्—कार्पण्यात् । दानप्ररूढित —रूढिप्रदानात् प्रसिद्ध-दानग्रहणात् । संग्रहात्—सर्वपरिग्रहग्रहणाद्धेतो । क्षमण—मुपवासः । षष्ठ—षष्ठप्रायश्चित्त । अष्टम—अष्टमदण्डनं । मासमूलके—द्वे, मासः मासिकं, मूलं पुनर्दीक्षा । गृहस्थमात्रास्थापने क्षमणं प्रायश्चित्तं सोपस्थानं । सुवर्णहिरण्यादिपरिग्रहलोभे च सति षष्ठं । याचित्वा सुवर्णहिरण्यादिपरिग्रहादानेऽष्टम । ग्रहणसङ्क्रान्तिव्यतिपातादिषु प्रसिद्धेषु हिरण्यसुवर्णादिसग्रहणे सति मासिकं । हिरण्यसुवर्णमणिमुक्ताफलादिसाभोगपरिग्रहसमादाने मूलं प्रायश्चित्त भवति ॥ ३२ ॥

पचमम् ।

रात्रौ ग्लानेन भुक्ते स्यादेकस्मिंश्च चतुर्विधे ।
उपवासः प्रदातव्य षष्ठमेव यथाक्रमम् ॥ ३३ ॥

रात्रौ—निशि । ग्लानेन—व्याधिविशेषपरिश्रमविविधोपवासादिपरिपीडितेन सता कर्मोदयवशात् प्राणसकटे । भुक्ते—ऽभ्यवहृते सति । स्यात्—भवेत् । एकस्मिन्—भुक्ते एकतराहारे भुक्ते, सति । चतुर्विधे चतुष्प्रकारे अशने पाने खाद्ये स्वाद्ये च । उपवास·—क्षमण । प्रदातव्य.—प्रदेयः । षष्ठमेव षष्ठ । यथाक्रमं--यथासख्यं । एकस्मिन्नाहारे क्षमणं । चतुर्विधाहारे षष्ठमिति प्रयोज्यम् ॥ ३३ ॥

षष्ठम् ।

व्यायामगमनेऽमार्गे प्रासुकेऽप्रासुके यतेः ।
कायोत्सर्गोपवासौ स्तोऽपूर्णक्रोशे यथाक्रमम् ॥ ३४ ॥

व्यायामगमने—पादभ्रमकरणप्रयाणे सति । अमार्गे—उत्पथे । प्रासुके—प्रगता असवः प्राणा यस्मादसौ प्रासुकः विजन्तुकस्तस्मिन् । अप्रासुके—सजन्तुके च । यतेः—साधोः । कायोत्सर्गोपवासौ—कायोत्सर्गः उपवासश्च एतौ द्वावपि । स्तः—भवतः । अपूर्ते (र्णे)—असंभृते । क्रोशे—गव्यूतौ द्विदण्डसहस्रप्रमाणेऽध्वनि । यथाक्रमं—यथासंख्यं । प्रासुकमार्गेण व्यायामनिमित्तं गतस्य कायोत्सर्गः । अप्रासुकमार्गेणोपवास इति ॥ ३४ ॥

घननीहारतापेषु क्रोशैर्वन्हिस्वरग्रहैः ।
क्षमणं प्रासुके मार्गे द्विचतुःषड्भिरन्यथा ॥ ३५ ॥

घननीहारतापेषु—घनः घनकालः वर्षाकालः, नीहारः नीहारकालः शीतकाल, तापः तापकाल उष्णसमयः तेषु । क्रोशैः—गव्यूतिभिः । वन्हिस्वरग्रहैः—वन्हयः त्रयः, स्वराः षट्, ग्रहा नव तैः कृत्वा गमने सति । क्षमणं—उपवासः । प्रासुके मार्गे—विजन्तुके वर्त्मनि । द्विचतुःषड्भिरन्यथा—अन्यथाऽन्येन प्रकारेण अप्रासुके मार्गे द्विचतुःषड्भिः क्रोशैः क्षमणं । द्वाभ्यां वर्षाकाले अप्रासुके मार्गे गमने सति उपवासः प्रायश्चित्तं भवति । चतुः क्रोशेषु शीतकालेऽप्रासुकमार्गे गमने क्षमणं प्रायश्चित्त भवतीति यथाक्रमं योज्यं । एतद्दिवसे उत्तरत्र रात्रिग्रहणात् ॥ ३५ ॥

दशमादष्टमाच्छुद्धो रात्रिगामी सजन्तुके ।
विजन्तौ च त्रिभिः क्रोशैर्मार्गे प्रावृषि संयतः ॥ ३६ ॥

दशमात्—चतुर्भिर्निरन्तरोपवासैः । अष्टमात्—त्रिभिर्निरन्तरोपवासैः । शुद्धो—विशुद्धो भवति । रात्रिगामी—रात्रौ गच्छतीत्येवंशीलः रात्रिगामी निशाप्रयासी । सजन्तुके—सजीवे मार्गे । विजन्तौ च प्रासुकेऽपि । त्रिभिः क्रोशैः—त्रिभिर्गव्यूतिभिः । मार्गे—वर्त्मनि । प्रावृषि—प्रावृट्काले । संयतः—साधुः । प्रावट्काले कथंचिद्रात्रिगमने सति अप्रासुकमार्गेण दशमं प्रायश्चित्तं भवति । त्रिभिः क्रोशैः प्रासुके चाष्टमात् संशुद्ध्यति ॥ ३६ ॥

हिमे क्रोशचतुष्केणाप्यष्टमं षष्ठमीर्यते ।
ग्रीष्मे क्रोशेषु षट्सु स्यात् षष्ठमन्यत्र च क्षमा ॥ ३७ ॥

हिमे—हिमकाले । क्रोशचतुष्केणापि—गव्यूतिचतुष्टयेन गत्वा । अष्टमं—अष्टमप्रायश्चित्तं भवति । प्रासुके तु षष्ठं स्यात् । ग्रीष्मे—उष्णकाले । क्रोशेषु षट्सु—षट्सु गव्यूतिषु । स्यात्—भवेत् । षष्ठं—द्वावुपवासौ निरन्तरौ । अन्यत्र च—प्रासुकमार्गेऽपि । क्षमा—क्षमणमुपवासः । उष्णकाले षट्सु क्रोशेषु रात्रिगमने सति अप्रासुकमार्गेण षष्ठ प्रायश्चित्त । प्रासुकमार्गे पुन क्षमण भवति ॥ ३७ ॥

सप्रतिक्रमणं मूलं तावन्ति क्षमणानि च ।
स्याल्लघु प्रथमे पक्षे मध्येन्त्ये योगभंजने ॥ ३८ ॥

सप्रतिक्रमण—प्रतिक्रमणया सहित । मूलं—पचकल्याण । तावन्ति—तत्प्रमाणानि । क्षमणानि च—उपवासाश्च । स्यात्—भवेत् । लघुः—लघुमासः । प्रथमे पक्षे—आद्ये पचदशरात्रे । मध्ये—मध्यकाले । अन्त्ये—अन्ते भवोऽन्त्यस्तस्मिन्नन्त्ये चरमे पक्षे । योगभजने—योगभगे । वर्षासु राविद्धर (?) देशभगादिकारणाद्योगे भग्ने सति प्रथमपक्ष एव सोपस्थान मासिकं प्रायश्चित्त भवति । प्रथमपक्षार्ध यावन्तो दिवसा तिष्ठन्ति तावन्त उपवासा प्रायश्चित्त । ततोऽन्त्ये काले पक्षे शेषे भिन्ने सति लघुमासः प्रायश्चित्तं भवति ॥ ३८ ॥

जानुदघ्ने तनूत्सर्गः क्षमणं चतुरगुले ।
द्विगुणा द्विगुणास्तस्मादुपवासा. स्युरम्भसि ॥ ३९ ॥

जानुदघ्न—जानुमात्रे । अभसि—। तनूत्सर्गः—कायोत्सर्ग । क्षमणं—उपवासः प्रायश्चित्तं तस्य । चतुरंगुले—चतुरंगुलप्रमाणे सति । द्विगुणा द्विगुणास्तस्मात्—ततः । उपवासाः—क्षमणानि । स्युः—भवेयु । अंभसि पानीये मध्येन गतस्य सतः कायोत्सर्गः प्रायश्चित्तं भवति । ततश्चतुरंगुले

पानीये गतस्य उपवासः । ततः परं चतुरंगुले चतुरङ्गुले जले सति द्विगुणा द्विगुणा उपवासा भवन्ति ॥ ३९ ॥

दण्डैः षोडशभिर्मेये भवन्त्येते जलेऽञ्जसा ।
कायोत्सर्गोपवासास्तु जन्तुकीर्णे ततोऽधिकाः ॥ ४० ॥

दण्डैः—चतुर्हस्तप्रमाणैः । षोडशाभिर्मेये–षोडशाभिर्दण्डैर्मेये परिच्छेद्याः । भवन्ति—सन्ति । एते–इमे प्रागुक्ताः । जले—पानीये । अंजसा—परमार्थेन स्फुटं । कायोत्सर्गोपवासा.—कायोत्सर्गा उपवासाश्च सन्ति । जन्तुकीर्णे–तु, जन्तुकीर्णे पुनः प्राणिगणसंभृते सति । ततः—तेभ्यः कायोत्सर्गोपवासेभ्यः । अधिकाः--प्रवृद्धा । षोडशदण्डप्रमाणे पानीये मध्येन गतस्य साधोः पूर्वोक्ताः कायोत्सर्गोपवासा भवन्ति न न्यने । सजन्तुके तु ततोऽभ्यधिकाश्च पूर्वोद्दिष्टप्रायश्चित्तप्रमाणकायोत्सर्गोपवासेभ्यः सकाशात् सातिरेका. सातिरेका कायोत्सर्गोपवासा भवन्तीत्यर्थ ॥ ४० ॥

स्वपरार्थप्रयुक्तैश्च नावाद्यैस्तरणे सति ।
स्वल्पं वा बहु वा दद्याज्ज्ञातकालादिको गणी ॥ ४१ ॥

स्वपरार्थप्रयुक्तैश्च—स्वार्थमात्मनि निमित्त, परार्थमन्यजनहेतोः, प्रयुक्तैः प्रेरितैः प्रयोजितै । नावाद्यै—द्रोणीप्रभृतिभिः कृत्वा । तरणे—जले उत्तरणे । सति—विद्यमाने । स्वल्पं—स्तोकं कायोत्सर्गं । बहु वा—अथवा भूर्यपि । दद्यात्—प्रयच्छेत् । ज्ञातकालादिकः–अवगमितकालादिकः कालमवबुद्ध्य प्रायश्चित्त वितरति । गणी —आचार्यः ॥ ४१ ॥

दक्षेण गणिना देयं जलयाने विशोधनम् ।
साधूनामपि चार्याणां जलकेलिमहासुखिः ॥ ४२ ॥

दक्षेण—कुशलेन । गणिना—आचार्येण । देयं—दातव्यं । जलयाने पानीयगमने । विशोधनं–प्रायश्चित्तं । साधूनां—यतीनां । अपि चार्याणां–

१ अल्प स्थाने केलि इति पाठः पुस्तके ।

अपि च संयतिकानां च । जलकेलिमहासूणिः—जलकेलिः जलक्रीडा तस्या विनिवारणे महासृणिश्च तस्य प्रायश्चित्त नाम ॥ ४१ ॥

युग्यादिगमने शुद्धिं द्विगुणां पथिशुद्धितः ।
ज्ञात्वा नृजातं वाचार्यो दद्यात्तद्दोषघातिनीम् ॥ ४३ ॥

युग्यादिगमने—युग्ययानादिप्रयाणे । अस्य [वि] शुद्धि—प्रायश्चित्तं। द्विगुणां–द्विः (?)। पथिशुद्धित.—पथ शुद्धि पथिशुद्धिस्तस्याः पथिशुद्धित' मार्गगमनप्रायश्चित्तात् सकाशात् । ज्ञात्वा—अवबुद्ध्य । नृजातं–पुरुषजातसामान्य मन्दग्लानादिकं । आचार्यो—गणेन्द्रः । दद्यात्–प्रयच्छेत् । तद्दोषघातिनीं—तस्य पुरुषस्य दोषघातिनीं, अथवा स चासौ दोषश्च तद्दोषस्तस्य घातिनी शीला विनाशिका शुद्धि । वर्त्मगमने यत्प्रायश्चित्तं प्राग्विनिश्चित्त तदेव दोलिकादिगमने कथंचित्सम्पन्ने सति द्विगुण भवतीति योज्यम् ॥ ४३ ॥

सप्तपादेषु निष्पिच्छः कायोत्सर्गाद्विशुद्ध्यति ।
गव्यूतिगमने शुद्धिमुपवासं समश्नुते ॥ ४४ ॥

सप्तपादेषु—सप्तसु पादेषु गमने सति । निष्पिच्छ.—प्रतिलेखविराहितः साधु । कायोत्सर्गात्–तनूत्सर्गात्प्रायश्चित्तात् । विशुद्ध्यति—निर्दोषो भवति । गव्यूतिगमने—क्रोशमात्रप्रयाणे सति निष्पिच्छः । शुद्धिं प्रायश्चित्तं । उपवासं–क्षमण । समश्नुते—प्राप्नोति । द्विगुणमित्यधिकारात्क्रोशादनन्तर प्रतिक्रोशं द्विगुणा द्विगुणां शुद्धि समश्नुते इति व्याख्यातव्यम् ॥ ४४ ॥

ईर्यासमिति ।

भाषासमितिमुन्मुच्य मौनं कलहकारिणः ।
क्षमणं च गुरूद्दिष्टमपि षट्कर्मदेशिन' ॥ ४५ ॥

भाषासमितिमुन्मुच्य–भाषासंयम उन्मुच्य परिहृत्य व्यतिक्रम्य । मौनं कलहकारिण:–कलिविधायिनः मुनेः, मौनं वाचंयमत्वं वाक्संयमः प्रायश्चित्तं भवति। क्षमणं च गुरूद्दिष्टमपि [स्यात्] गुरुद्दिष्टमाचार्योद्दिष्टमपि । षट्कर्मदेशिनः–-षट्कर्मदेशिनो हि प्रायश्चित्तमपि, वाणिज्यविद्योपदेशिनः षड्जीवनिकायबाधाभिः कर्मोपदेशिनो वापि क्षमणं प्रायश्चित्तं भवति ॥ ४५ ॥

असंयमजनज्ञातं कलहं विदधाति यः ।
बहूपवाससयुक्तं मौन तस्य वितीर्यते ॥ ४६ ॥

असंयमजनज्ञात—मिथ्यादृष्टिलोकावबुद्धं । कलहं—कलिं । विदधाति—करोति । य'—साधु' । बहूपवाससयुक्त—भूरिक्षमणसमन्वितं । मौनं—वाचयमत्वं । तस्य–साधो. । वितीर्यते–दीयते ॥ ४६ ॥

कलहेन परीतापकारिणः मौनसयुता. ।
उपवासा मुने' पच भवन्ति नृविशेषतः ॥ ४७ ॥

कलहेन—कलिना कृत्वा । परीतापकारिण.—सन्तापविधायिनः । मौनसयुताः—वाचयमत्वोपलक्षिता । उपवासाः—क्षमणानि । मुनेः—साधोः । पच—पचोपवासा. । भवन्ति—सन्ति । नृविशेषतः—पुरुषविशेषात् । मन्दग्लानादिपुरुषविशेषमगवगम्य देयाः ॥ ४७ ॥

जनज्ञातस्य लोचस्य बहुभिः क्षमणै. सह ।
आषण्मासं जघन्येन गुरूद्दिष्टं प्रकर्षतः ॥ ४८ ॥

जनज्ञातस्य—सकललोकावगतस्य कलहस्य सतः । लोचस्य[1]—वालोत्पाटस्य भवति । बहुभिः—भूरिभिः । क्षमणै—रुपवासैः । सार्धं—सम । आषण्मासं जघन्येन—जघन्येन सर्वतः स्तोककालेन आषण्मासं एकोपवासादिषण्मासपर्यन्त प्रायश्चित्त । गुरूद्दिष्टं प्रकर्षतः—-प्रकर्षेणोत्कर्षेण गुरूद्दिष्टमाचार्योपदिष्टं भवति ॥ ४८ ॥

---

१ अस्य स्थाने पुस्तके लोचश्चेति पाठः, किन्तु मूले लोचस्येति

हस्तेन हन्ति पादेन दण्डेनाथ प्रताडयेत् ।
एकाद्यनेकधा देयं क्षमणं नृविशेषतः ॥ ४९ ॥

हस्तेन—करेण । हंति—ताडयति । पादेन—चरणेन । दण्डेन—लकुटेन । अथ—अथवा । प्रताडयेत्—हंति । यदि साधुः कथमपि तदा, एकादि–एकप्रभृति । अनेकधा—अनेकप्रकारं । क्षमणं—उपवासः । देयं—दातव्यं । नृविशेषतः—पुरुषविशेषेण ॥४९ ॥

यश्च प्रोत्साह्य हस्तेन कलहयेत् परस्परं ।
असंभाष्योऽस्य षष्ठ स्यादाषण्मासं सुपापिनः ॥ ५० ॥

यश्च—योऽपि यतिरूपः । प्रोत्साह्य—प्रचोद्य । हस्तेन—करेण । कलहयेत्–कलह कारयेत् । परस्परं–अन्योन्य । स , असंभाष्यो–नभिलाप्यः । अस्य—एतस्य । षष्ठ–प्रायश्चित्त । स्यात्–भवेत् । आषण्मासं—षण्मासपर्यन्त । सुपापिनः–पापिष्ठस्य ॥ ५० ॥

छिन्नापराधभाषायामप्यसयतबोधने ।
नृत्यगायेति चालापेऽप्यष्टम दण्डनं मतम् ॥ ५१ ॥

छिन्नापराधभाषाया—कृतप्रायश्चित्तस्य दोषस्य पुन परिभाषणे कृते सति । अप्यसयतबोधने—सुप्तस्यासयतस्य विरतस्योत्थापनेऽपि । नृत्यगायेति चालापे—नृत्यनटगाय आलापय (?) इति एवमपि आलापे निगदिते । चशब्दात् व (न) र्तने च गाने च । अष्टमं—त्रयउपवासा निरन्तराः । दण्डनं—प्रायश्चित्त । मतं—इष्टम् ॥ ५१ ॥

चतुर्वर्णापराधाभिभाषिण स्यादवन्दनः ।
असंभाष्यश्च कर्तव्यः स गाणं गणिकोऽपि च ॥ ५२ ॥

चतुर्वर्णापराधाभिभाषिणः—चतुर्वणः ऋषिवर्णः ऋषिमुनियत्यनगाराः साध्वार्याश्रावकश्राविका वा तस्यापराधं दोषं अभिभाषते इत्येवं शीलः साधु । स्यात्—भवेत् । अवन्दनः—अवन्द्यः । असंभाष्यश्च—अनभि-

लाप्यश्च। कर्तव्यः—करणीयः पुरुषः। गाणं गणकोऽपि च—गाणं गणिकश्च कर्तव्यः गाणं गणको नाम तस्माद्गणान्निर्घाटनीयः। पुनरस्मादपि भूयोऽन्यतोऽपि उद्वासयितव्यः। ततो यदि पश्चात् तापसन्तापचित्तः सन्नेव प्रणिगदति यथा भगवन्! मम प्रायश्चित्तं ददतेति। ततश्चातुर्वर्ण्यश्रमणसघमध्ये तस्य विशुद्धिर्विधेयेति॥ ५२॥

भाषासमिति।

अज्ञानाद्व्याधितो दर्पात् सकृत्कन्दाशनेऽसकृत्।
कायोत्सर्गः क्षमा क्षान्ति· पंचकं मासमूलके॥ ५३॥

अज्ञानात्—मोहात्। व्याधितो—व्याधे रोगात्। दर्पात्—अहंकाराद्धेतो·। सकृत्—एकवारं। कन्दाशने—कन्दा आर्द्र(र्द्र)ककदादय, इह कन्दग्रहणमुपलक्षणार्थं, आदिशब्दो वात्र लुप्तनिर्दिष्टः, तेन कन्दफलबीजमूलाद्यप्रासुक संगृहीतं भवति। तत्र कन्दा सूरणपिण्डालुरतालत्रादयः, फलानि आम्रप्रमुखबीजपूरकादीनि, बीजानि गोधूममुद्गमाषराजमाषादीनि, मूलानि सौभाजनकैरडमूलादीनि तेषामशने भक्षणे कृते सति। असकृत्—अनेकवारं च। कायोत्सर्ग·—तनूत्सर्गः। क्षमा—क्षमणं। क्षान्तिः—उपवासः। पंचकं—कल्याणक। मासमूलके—मासः मासिकं, मूलं पुनर्दीक्षा। आगममजानानः अप्रासुकमिति वा। अनवबुद्ध्यमानो यदि कन्दमूलाद्यभ्यवहरति तदा सकृत्कायोत्सर्गः प्रायश्चित्तं भवति। असकृदुपवास·। जानन्नपि व्याधिबाधितः सन् परिखादति तदानीं सकृदुपवासः। असकृत्पंचक लभते। निःशंकः सन् समुत्पाद्य सछिद्य कन्दमूलादि रसायनादिनिमित्तमत्ति तदा सकृन्मासिकं। असकृत्साभोगेन मूलं प्रायश्चित्तमवाप्नोति। अथवा ज्ञाने सकृदत्यन्तस्तोके आलोचना, अन्यत्र कायोत्सर्गः॥ ५३॥

कुड्याद्यालम्ब्य निष्ठ्य चतुरङ्गुलसंस्थितिम्।
त्यक्त्वोक्त्वा क्षमणं ग्लाने भुक्ते षष्ठं तथा परे॥ ५४॥

कुड्यं—भित्तिः, आदिशब्देन स्तंभप्रभृति च। आलम्ब्य—आश्रित्य। निष्ठूय—निष्ठीवन विधाय। चतुरंगुलसंस्थितिं त्यक्त्वा—चतुरंगुलान्तरित-पादविन्यासं चोन्मुच्य। उक्त्वा—निगद्य भुक्ते सति। क्षमण—उपवास:। ग्लाने—च, पवासादिपरिपीडिते पुरुषे। भुक्ते—भुक्तवति प्रायश्चित्त भवति। षष्ठं तथा परे—तथा तेनैव न्यायेन, परे परस्मिन् अग्लाने पुरुषे पूर्वोक्त-विधानेन भुक्ते सति, षष्ठं प्रायश्चित्त भवति॥ ५४॥

काकादिकान्तरायेऽपि भग्ने क्षमणमुच्यते।
गृहीतावग्रहे त्याग सर्वं भुक्तवत क्षमा॥ ५५॥

काकादिकान्तरायेऽपि भग्ने—काकामेध्यच्छर्दिरोधरुधिरावलोकनाश्रु-पातादिकान्तराये भग्ने खडिते सति। क्षमण—उपवासप्रायश्चित्त। उच्यते—ऽभिधीयते। गृहीतावग्रहे—उपात्तनिवृत्तौ च भगे सति। त्यागः—कृतनिवृत्तेर्वस्तुन भोजने क्रियमाणे सति पुन सम्प्रते त्याग तद्भोजन-परिहार एव प्रायश्चित्त। सर्वं भुक्तवतः—सर्वमाहार भुक्तस्य सत। क्षमा—उपवासो दण्डो भवति॥ ५५॥

महान्तरायसभूतौ क्षमणेन प्रतिक्रम.।
भुज्यमानेक्षते शल्ये षष्ठेनाष्टमतो मुखे॥ ५६॥

महान्तरायसंभूतौ—महान्तरायसभवे अस्थिससक्तान्नसंसेवने सति। क्षमणेन—उपवासेन सह। प्रतिक्रमः—प्रतिक्रमणप्रायश्चित्त भवति। भुज्यमाने—अद्यमाने ओदनादौ विषयभूते। ईक्षिते—दृष्टे सति। शल्ये—अस्थि (?)। षष्ठेन षष्ठप्रायश्चित्तेन सह प्रतिक्रम.। अष्टमतः अष्ट-मेन सह प्रतिक्रम. प्रायश्चित्तं भवति। मुखे—आस्ये सति। इह शल्यग्रह-णमुपलक्षणार्थं। अत. सार्द्रचर्मरुधिरादावप्येवमेव प्रायश्चित्त भवति॥ ५६॥

आधाकर्मणि सव्याधेर्निर्व्याधे सकृदन्यत।
उपवासोऽथ षष्ठं च मासिकं मूलमेव च॥ ५७॥

आधाकर्मणि—आधानमाधा अध्यारोपः तस्याः कर्म क्रिया तस्मिन्नाधाकर्मणि षड्जीवनिकायवधविधानाभिसन्धिपूर्वकं स्वतः स्वभावादेव निष्पन्नान्नपाने । सव्याधेः—सरोगस्य । निर्व्याधेः—नीरोगस्य । सकृत्—एकवारं । अन्यतः—अन्यस्मात् असकृदित्यर्थः । उपवासः—क्षमणं । अथा—नन्तर । षष्ठ—प्रायश्चित्त । मासिकं—पंचकल्याणं । मूलमेव च—पुनर्दीक्षा । व्याध्यधीनत्वात्सकृदाधाकर्मणि भुक्ते सति उपवासप्रायश्चित्त भवति । असकृत् षष्ठं । निर्व्याधिना सकृदाधाकर्मणि भुक्ते मासिकं । असकृत्सर्वकाल षड्जीवनिकायानामाबाधामाधाय भुक्ते सति मूलमेव प्रायश्चित्त भवति ॥ ५७ ॥

स्वाध्यायसिद्धये साधुर्यद्युद्देशादि सेवते ।
प्रायश्चित्तं तदा तस्य सर्वदैव प्रतिक्रमः ॥ ५८ ॥

स्वाध्यायसिद्धये—स्वाध्यायाय भवति निमित्त (पठननिमित्त) । साधुरपि । यदि—चेत् । उद्देशादि—उद्देशकादिदोषजातं । सेवते—अनुभवति । प्रायश्चित्त—विशुद्धिः । तदा—तदानी । तस्य—उद्देशादिनिषेविणः । सर्वदैव—सर्वकालमपि । प्रतिक्रमः—प्रतिक्रमण । इहापि प्रतिक्रमो नियम इति वेदितव्यः ॥ ५८ ॥

एकं ग्राम चरेद्भिक्षुर्गन्तुमन्यो न कल्पत ।
द्वितीयं चरतो ग्रामं सोपस्थानं भवेत्क्षमा ॥ ५९ ॥

एकं ग्राम—एक नगरादिसन्निवेशं । चरेत्—चरति भिक्षार्थ पर्यटति । भिक्षुः—यति । गन्तुमन्यो न कल्पते—एकस्मिन् ग्रामे चर्यार्थं पर्यट्य तस्मिन्नेव दिवसे भिक्षार्थं द्वितीयो ग्राम गन्तुं न कल्पते नोचित. । द्वितीयं—अन्य । चरतो—भ्रमत ग्रामं । सोपस्थानं—सप्रतिक्रमणा । भवेत्—स्यात् । क्षमा—क्षमणम् ॥ ५९ ॥

स्वाध्यायरहित काले ग्रामगोचरगामिनः ।
कायोत्सर्गोपवासौ हि यथाक्रममनूदितौ ॥ ६० ॥

स्वाध्यायरहिते—स्वाध्यायवर्जिते । काले-समये स्वाध्यायकाले स्वाध्यायक्रियामागममाध्ययनं वाविधाय । ग्रामगोचरगामिनः—ग्रामगामिनः गोचरगामिनश्च व्याध्युपवासादिकारणात् भिक्षार्थं प्रविष्टस्य सतः साधोः । कायोत्सर्गोपवासो—ग्रामान्तरगतस्य कायोत्सर्गः । चर्यार्थं प्रविष्टस्योपवासः प्रायश्चित्तं भवतीति यथाक्रममभिसम्बन्धः ॥ ६० ॥

एषणासमिति ।

काष्ठादि चलयेत् स्थानं क्षिपेद्वापि ततोऽन्यतः ।
कायोत्सर्गमवाप्नोति विचक्षुर्विषये क्षमा ॥ ६१ ॥

काष्ठादि—दारूपलतृणकर्परप्रमुख वस्तु । चलयेत्—कपयति । स्थानात्—प्रदेशात् । क्षिपेद्वापि ततोऽन्यतः—ततस्तस्मात्स्थानात्, क्षिपेद्वा विसृजेद्वा, अन्यतोऽन्यस्मिन् प्रदेशे तदा । कायोत्सर्ग—तनूत्सर्ग । अवाप्नोति—लभते । अचक्षुर्विषये—अदृष्टिगोचरे । क्षमा—क्षमणं प्रायश्चित्तम् ॥ ६१ ॥

आदाननिक्षेपणासमिति ।

ऊर्ध्वे हरिततृणादीनामुच्चारादिविसर्जने ।
कायोत्सर्गो भवेत् स्तोके क्षमणं बहुशोऽपि च ॥ ६२ ॥

ऊर्ध्वं—उपरि । हरिततृणादीनां—हरिततृणमच्छतृणं, आदिशब्देन बीजाङ्कुरशिलभेदपृथ्वीभेदादीना चोपरिष्टात् । उच्चारादिविसर्जने—मूत्रपुरीषादिमलोज्झने कृते सति । कायोत्सर्ग.—तनूत्सर्गः । भवेत्—स्यात् । स्तोके—स्तोकवारे । क्षमणं बहुशोऽपि च बहुवारेषु—च क्षमणमुपवासः प्रायश्चित्तं भवति ॥ ६२ ॥

प्रतिष्ठापनासमिति. ।

स्पर्शादीनामतीचारे निष्प्रमादप्रमादिनाम् ।
कायोत्सर्गोपवासाः स्युरेकैकपरिवर्द्धिताः ॥ ६३ ॥

स्पर्शादीनां---स्पर्शरसघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियाणां । अतीचारे---दोषे अनिरोधे सति । निष्प्रमादप्रमादिनां---निष्प्रमादस्य अप्रमत्तस्य, प्रमादिनः प्रमादवतश्च पुरुषस्य । कायोत्सर्गोपवासाः---कायोत्सर्गा उपवासाश्च । स्युः---भवेयुः । एकैकपरिवार्द्धताः---एकोत्तरवृद्धिमधिरोपिता. । स्पर्शः कर्कशमृदुगुरुलघु-शीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदादष्टविधः । रसस्तिक्तकटुककषायाम्लमधुरलवणवि-शेषात् षड्विधः । गन्धो द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च । रूपं पंचप्रकारं कृष्णनीलपी-तशुक्ललोहितविशेषात् । शब्दः षड्जर्षभगान्धारमध्यमपंचमधैवतनिषादविशे-षतः सप्तप्रकारः । तेषु विषये दोषविशेषविशुद्धिरियं भवति । अप्रमत्तस्यै-कोत्तरवृद्ध्यादिकायोत्सर्गा भवन्ति---स्पर्शे एकः कायोत्सर्गः, रसे द्वौ, घ्राणे त्रयः, चक्षुषि चत्वारः, श्रोत्रे पंच । प्रमत्तस्योपवासा भवन्ति---स्पर्शे एक उपवासः, रसे द्वौ, घ्राणे त्रयः, चक्षुषि चत्वारः, श्रोत्रे पंच उपवासा इति ॥ ६३ ॥

इन्द्रियनिरोधम् ।

वन्दनानियमध्वंसे कालच्छेदे विशोषणम् ।
स्वाध्यायस्य चतुष्केऽपि कायोत्सर्गो विकालतः ॥ ६४ ॥

वन्दनानियमध्वंसे---वन्दना अर्हदादीनामभिवादः, नियमो दैवसिकादि-प्रतिक्रमणं, तयोः ध्वंसे विनिपाते सति, पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णदेववन्दना-दिविरहे रात्रिगोचरादिनियमवर्जने च । कालच्छेदे---स्वकालातिक्रमे च । विशोषणं---विशोषः उपवासः प्रायश्चित्त भवति । स्वकालश्च वन्दनायाः सन्ध्याकालः, दैवसिकनियमस्यादित्यबिम्बार्द्धास्तमनात्पूर्वमेव प्रारम्भः रात्रिनियमस्य प्रभास्फोटात्प्रागेव परिसमापनं । स्वाध्यायस्य चतुष्केऽपि---

स्वाध्यायस्य चतुष्टये च विषये ध्वंसे सति विशोषणं प्रायश्चित्तं भवति । कायोत्सर्गो विकालतः—विकालतः विकालात् स्वाध्यायस्य कालविच्छेदे सति कायोत्सर्गः प्रायश्चित्तं । स्वाध्यायस्य कालोऽपि दिवसे पूर्वाह्णे घटिकात्रये सति, अपराह्णेऽन्त्यनाडिकात्रयात्पूर्वं, रात्रौ प्रथमभागे नाडीत्रये गते सति, चरमभागेऽन्त्यनाडित्रयात्प्राक् ॥ ६४ ॥

प्रतिमासमुपोष' स्याच्चतुर्मास्यां पयोधयः ।
अष्टमासेष्वथाष्टौ च द्वादशाब्दे प्रकीर्तिताः ॥ ६५ ॥

प्रतिमासं—मासं प्रति । उपोष.—उपोषण । स्यात्—भवेत् । मासे मासे उपवासोऽवश्यं कर्तव्यः । चतुर्मास्यां पयोधयः—चतुर्षु मासेषु गतेषु पयोधयः समुद्राश्चत्वार उपवासा अवश्यं कर्तव्याः । अष्टमासेष्वथाष्टौ च—अष्टमासेषु अष्टसु मासेषु, अथ अनन्तर, अष्टौ च अष्ट उपवासा विधातव्याः । द्वादशाब्दे—अब्दे वर्षे द्वादश उपवासाः करणीया' । प्रकीर्तिताः—कथिताः ॥ ६५ ॥

पक्षे मासे कृतेः षष्ठं लघने सप्रतिक्रमम् ।
अन्यस्या द्विगुणं देयं प्रागुक्तं निर्जरार्थिन. ॥ ६६ ॥

पक्षे मासे—पक्षे पचदशरात्रे, मासे त्रिंशद्रात्रे च विषये या कृतिः क्रिया प्रतिक्रमणा तस्याः लंघने सकृत् सति । षष्ठं—षष्ठोपवासः प्रायश्चित्त भवति । लघने—अतिक्रमणे । सप्रतिक्रम—प्रतिक्रमणया सह । अन्यस्याः—परस्या. चातुर्मास्याः सावत्सरिकायाश्च क्रियायाः लघने सति । सप्रतिक्रमण, द्विगुणं—द्विः । देयं—दातव्यं । प्रागुक्तं—पूर्वोपदिष्ट प्रायश्चित्त । चातुर्मास्याः क्रियाया विलंघने सति अष्टौ उपवासा भवन्ति, सावत्सरिकायाश्चतुर्विंशतिरुपवासाः सन्ति । निर्जरार्थिनः—कर्मक्षयाभिलाषिणः साधो. ॥ ६६ ॥

आवश्यकम् ।

चतुर्मासानथो वर्षं युगं लोचं विलंघयेत् ।
क्षमा षष्ठं च मासोऽपि ग्लानेऽन्यत्र निरन्तरः ॥ ६७ ॥

चतुर्मासान्—चतुरो मासान् । अथो—अथवा । वर्षं—संवत्सरं । युगं—पंचवर्षाणि । लोचं—बालोत्पाटं । विलंघयेत्—प्रापयति यदि तदानीं यथाक्रमं, क्षमा—उपवासः । षष्ठं च—षष्ठोपवासः । मासोऽपि—मासिकं चेत्येतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति । ग्लाने—आतुरे । अन्यत्र—अन्यस्मिन् पुरुषे निर्व्याधौ । निरन्तरः—व्यवधानविरहितो मासो विशुद्धिर्भवति ॥६७॥

लोच. ।

उपसर्गाद्रुजो हेतोर्दर्पेणाचेलभंजने ।
क्षमणं षष्ठमासौ स्तो मूलमेव ततः पर ॥ ६८ ॥

उपसर्गात्—स्वजननरेश्वरादिभिः परिगृहीतस्यात्यन्तसंकटपरिपतितस्य यतेः सत. । रुजो—व्याधेः । हेतोः—केनापि निमित्तेन सता रूपपरिवर्ते कृते सति । दर्पेण—गर्वेण चाहंकारं कृत्वा । अचेलभंजने आचेलक्यभंगे कृते यथाक्रममेतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति । क्षमणं—उपवासः । षष्ठमासौ—षष्ठं षष्ठोपवासः, मासो मासिकं च । स्तः—भवतः । मूलमेव ततः परं—ततः परं तदनन्तरं दर्पतः मूलमेवेति नान्यत्प्रायश्चित्तम् ॥ ६८ ॥

आचेलक्यम् ।

दन्तकाष्ठे गृहस्थार्हशय्यासंस्थानसेवने ।
कल्याणं सकृदाख्यातं पंचकल्याणमन्यथा ॥ ६९ ॥

दन्तकाष्ठे—दन्तधावने कृते सति । गृहस्थार्हशय्यासंस्थानसेवने—गृहस्थार्हाया गृहिजनोचितायाः, शय्यायाः तल्पस्य शयनस्य, संस्थानस्य

१ निरन्तरमिति मूल पाठः पुस्तके ।

च सेवने भंजने सति । कल्याणं—पंचकं भवति । सकृत्—एकवारं । आख्यातं—अभिहितं । पंचकल्याण—मासिकं । अन्यथा—अन्येन प्रकारेण असकृदित्यर्थः ॥ ६९ ॥

अस्नानक्षितिशयनदन्तधावनानि ।

अस्थित्यनेकसभुक्तेऽदर्पे दर्पे सकृन्मुहुः ।
कल्याणं मासिकं छेदः क्रमान्मूलं प्रकाशतः ॥ ७० ॥

अस्थित्यनेकसंभुक्ते—संभोजन भुक्तिः,—अस्थितिरनूर्ध्वभाव तया अस्थित्या संभोजन, न एक अनेकं अनेकं च तच्च संभुक्त चानेकसंभुक्तं अनेकं वारभोजन, तस्मिन्नस्थितिभोजनेऽनेकभक्ते च सति ।अदर्पे—अगर्वे।दर्पे—अहंकारे। सकृत्—एकवार । मुहुः—पुनः । कल्याणं—पचकं अनहंकारे सकृत् । असकृन्मासिकं । दर्पतः सकृत् प्रव्रज्याच्छेदः । असकृत्, क्रमात्—क्रमेण, मूल—पुनर्दीक्षा । प्रकाशत.—प्रकाशात् साभोगेन लोकानामवलोकमानानां स्थितिभुक्त्यैकभक्तमूलगुणयोर्भंगे प्रायश्चित्तं भवति ॥ ७० ॥

स्थितिभोजनैकभक्ते ।

समितीन्द्रियलोचेषु भुशयेऽदन्तघर्षणे ।
कायोत्सर्गः सकृद्भूयः क्षमणं मूलमन्यत. ॥ ७१ ॥

समितीन्द्रियलोचेषु—समितिषु ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनसमितिषु, इन्द्रियेषु स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेषु, लोचे बालोत्पाटे । भूशये—भूमिशयने । अदन्तघर्षणे—अदन्तधावने मूलगुणेषु च । सर्वेष्वेतेषु मूलगुणेषु संक्लेशादिदोषविशेषे समुत्पन्ने सति अतिस्तोके मिथ्याकारः ततोऽधिके स्वनिन्दा, ततोऽपि गर्हा, ततश्चालोचना, ततो लघुकायोत्सर्गः, ततो मध्यमकायोत्सर्गः, ततः प्रवर्धमानस्तावद्यावन्महाकायोत्सर्गोऽष्टोत्तरशतो-

स्थानप्रमाणः । सकृत्—एकवारे प्रायश्चित्तं । भूयः क्षमणं—भूयः पुनः पुनः भंगविशेषे सति मुक्तमंडलनिर्विकृत्यैकस्थानाऽऽचाम्लानि भवन्ति तावद्या-वत्सर्वोत्कृष्टभंगे सति क्षमणमुपवासः सोपस्थानं प्रायश्चित्तं भवति । मूल-मन्यतः—अन्यतः अन्येषु मूलगुणेषु पंचमहाव्रतेषु षडावश्यकेषु आचेल-क्येऽस्नाने स्थितिभोजने एकभक्त इत्येतेषु सर्वेषु भंगे सकृत् सोपस्थानं क्षमणं प्रायश्चित्तं भवति । तदेवासकृदहंकाराप्रयत्नास्थिराविषु पुरुष-विशेषात्प्रवर्धमानं षष्ठाष्टमदशमद्वादशोपवासार्धमासमासोपवासषण्मासर्सव-त्सरादि ततो भवति, तदनन्तरं दीक्षाच्छेदो दिवसादिप्रायश्चित्तं, ततः सर्वोत्कृष्टं मूल विशुद्धिर्भवति ॥ ७१ ॥

मूलगुणा ।

द्रुमूलातोरणौ स्थास्नू आतापस्तद्द्वयात्मकः ।
चलयोगा भवन्त्यन्ये योगाः सर्वेऽथवा स्थिराः ॥ ७२ ॥

द्रुमूलातोरणौ स्थास्नू—द्रुमूलो द्रुममूलः वृक्षमूलो योगः, अतोरणोऽतो-रणयोगश्चैतौ द्वावपि योगविशेषौ, स्थास्नू स्थिरौ स्थिरयोगौ भवतः । आता-पस्तद्द्वयात्मकः—आतापः आतापनयोगः । तद्द्वयात्मकः चरस्थिरस्वभावो भवति चरोऽपि भवति स्थिरश्च भवति । अस्मिन् देशकाले मयातापनयो-गोऽवश्यं विधेय इत्यभिसन्धिनियमितः स्थिरः तद्विपरीतश्चल इति । चल-योगाः—चलयोगविशेषाः । भवन्ति—सन्ति । अन्ये—परेऽभ्रवकाशस्था-नमौनादिकाः । योगाः सर्वेऽथवा स्थिराः—अथवान्येन प्रकारेण, सर्वेऽपि निर्विशेषाश्च, योगास्तपोविधयः, स्थिरा ध्रुवा अपरिहार्यत्वात् आतत्परिस-माप्तेः ॥ ७२ ॥

भंजने स्थिरयोगानां नमस्काराद्विकारणात् ।
द्विमासोपवासाः स्युरन्येषामुपवासका ॥ ७३ ॥

भंजने—भंगे सति। स्थिरयोगानां—ध्रुवयोगानां। नमस्कारादिकार-णात्—वृक्षमूलादियोगे परिगृहीते सति अत्यन्तमक्षिकुक्षिशिरःशूलविसूचि-कासर्पोपसर्गादिकारणवशात् कर्णेजपभेषजप्रभृतनिमित्तात्। दिनमानोप-वासः—दिनमानेन दिवसप्रमाणेन, योगभंगे संजाते सति यावन्तोऽवधि-योगदिवसाः समवतिष्ठन्ते तावन्त उपवासाः। स्युः—भवेयुः। अन्ये-षां—अपरेषां स्थानमौनावग्रहादीना योगानां भंगे कथंचित् संजाते सति आलोचनादि प्रायश्चित्तं भवति तावद्यावत्, उपवासन—उपवासः सोपस्थानो भवति ॥ ७३ ॥

तत्प्रतिष्ठा च कर्तव्याभ्रावकाशे पुनर्भवेत्।
चतुर्विधं तपश्चापि पंचकल्याणमन्तिमम् ॥ ७४ ॥

तत्प्रतिष्ठा च—तेषु स्थानमौनावग्रहादिषु योगेषु प्रतिष्ठा च पुनर्व्यव-स्थापनमपि। कर्तव्या—करणीया, प्रायश्चित्त प्रदाय पुनरपि तत्रैव योगे स्थापयितव्य इत्यर्थः। अभ्रावकाशे पुन—बहिःशयने तु। भवेत्—स्यात्। चतुर्विधं—चतुष्प्रकार प्रायश्चित्तं आलोचना प्रतिक्रमणं उभयं विवेक., स च द्विविधः स्थानविवेको गणविवेकश्च। अन्तिम इत्येवमष्टमं भवति, तपस्वी (तपश्चापि)—उपवासाद्यपि भवति पुरुमंडलनिर्विकृत्येकस्था-नाचाम्लक्षमणकल्याणषष्ठाष्टमदशमद्वादशादि तावद्यावत्, पंचकल्याणं—मासिकं। अन्तिमं—पश्चिमं भवति ॥ ७४ ॥

सकृदप्रासुकासेवेऽसकृन्मोहादहंकृतेः।
क्षमणं पंचकं मासः सोपस्थानं च मूलकम् ॥ ७५ ॥

सकृत्—एकवारं। अप्रासुकासेवे—त्रसस्थावराद्युपहतवसतिप्रभृतिप्रदे-शसंसेवने सति। असकृत्—अनेकवारं। मोहात्—स्नेहात् अज्ञानतः। अहंकृतेः—अहंकारात् दर्पात्। क्षमणं—मोहात् स्तोककाले उपवासः प्रायश्चित्तं भवति। बहुशः, पंचकं—कल्याणं। दर्पात् स्तोककाले,

मासः—पंचकल्याणं सोपस्थानं—सप्रतिक्रमणं भवति । बहुशो वसतिसमारंभग्रामक्षेत्रादिचिन्ताभिधायिनो, मूलं—प्रायश्चित्तं भवति ॥ ७५ ॥

ग्रामादीनामजानानो यः कुर्यादुपदेशनम् ।

जानन् धर्माय कल्याणं मासिकं मूलगः स्मये ॥ ७६ ॥

ग्रामादीनां—ग्रामपुरखेटकर्वटमटंबगृहवसतिप्रभृतिसन्निवेशानां । अजानानः—दोषमनवबुद्ध्यमानः सन् । यो—यतिः । कुर्यात्—विदधाति । उपदेशनं—उपदेशं । जानन्—अवगच्छन्नपि । धर्माय—धर्मार्थं उपदेशं यदि वितनुते तदानीं अजानाने कल्याणं । धर्मकारणे, मासिकं—पंच-कल्याणं प्रायश्चित्तं गच्छतीति । मूलगः—मूलं प्रायश्चित्तं गच्छतीति मूलग. । स्मये—गर्वे सति । यदि दर्पेण ग्रामाद्युपदेशनं करोति तदा मूलं प्रायश्चित्तं समश्नुते ॥ ७६ ॥

आलोचना तनूत्सर्गः पूजोद्देशेऽप्रबोधने ।

सोपस्थाना सकृद्देया क्षमा कल्याणकं मुहुः ॥ ७७ ॥

आलोचना— गुरुभ्यः स्वदोषविनिवेदनं । तनूत्सर्गः—कायोत्सर्गः । पूजोद्देशे—पूजोपदेशने कृते सति । अप्रबोधने—अज्ञे पुरुषे । सोप-स्थाना सकृद्देया—आरंभपरिमाणं परिज्ञाय आलोचना वा कायोत्सर्गो वा तावद्यावत्, क्षमा—क्षमणं, सोपस्थाना सप्रतिक्रमणा, सकृदेकदिवसेषु, देया दातव्या । कल्याणकं मुहुः—मुहुः पुनः पुनर्यदि पूजाविधानं देशयति तदानीं कल्याणपंचकं प्रायश्चित्तं दातव्यं भवति ॥ ७७ ॥

जानानस्यापि संशुद्धिः सकृच्चासकृदेव च ।

सोपस्थानं हि कल्याणं मासिकं मूलमावचे ॥ ७८ ॥

जानानस्यापि दोषमवगच्छतोऽपि पुरुषस्य पूजोपदेशे सति । संशुद्धिः—प्रायश्चित्तं भवति । सकृत्—एकवारं । असकृदेव च—अनेकवारमपि । सोप स्थानं हि कल्याणं—सकृत्सोपस्थानं सप्रतिक्रमणं, हि स्फुटं, कल्याणपंचकं

भवति । असकृत्, मासिकं—पंचकल्याण । मूल—पुनर्दीक्षा भवति । आवधे आ समन्तात् वधे षड्जीवनिकायाना महारम्भे सति ॥ ७८ ॥

सल्लेखनेतरे ग्लाने सोपस्थाना विशोषणा ।
अनाभोगेऽथ साभोगे प्रभुक्ते मासिकं स्मृतम् ॥ ७९ ॥

सल्लेखनेतरे ग्लाने—सन्यासे प्रतिष्ठित सन् यदि क्षुत्तृट्परीषहविबाधितस्तस्मिन् इतरे, ग्लाने सामान्येनाष्टोपवासपक्षोपवासमासोपवासप्रमुखोपवासविशेषपरिपीडितस्तस्मिंश्च प्रभुक्ते सति । सोपस्थाना—सप्रतिक्रमणा । विशोषणा—उपवास. । अनाभोगे—केनचिदविज्ञाते सति । अथ—अथवा । साभोगे—लोकै समवबुद्धिः (द्धे) । प्रभुक्ते—भोजने सति । मासिकं—पंचकल्याणं स्मृतम् ॥ ७९ ॥

स्यात् सम्यक्त्वव्रतभ्रष्टैर्विहारे मासिकं क्षमा ।
जिनादीनामवर्णादौ सोपस्थानाङ्गसंस्कृते ? ॥ ८० ॥

स्यात्—भवेत् । सम्यक्त्वव्रतभ्रष्टै.—सम्यक्त्वपरिच्युतैः पुरुषै सह, व्रतभ्रष्टै दुःशीलताक्रोधमानमायालोभाविनयसघायशस्कारादित्वादिदोषविशेषदूषितव्रतैश्च सह । विहारे—विहरणे भ्रमणे आचरणे कृते सति । मासिक—पंचकल्याणप्रायश्चित्त भवति । क्षमा जिनादीनामवर्णादौ—जिनादीनामर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूना, अवर्णादौ असद्दोषाभिभाषणाविनय—शकाकाक्षादौ उपवासः प्रायश्चित्त भवति ॥ ८० ॥

निमित्तादिकसेवायां सोपस्थानोपवासनम् ।
सूत्रार्थाविनयाद्येष्वङ्गोत्सर्गालोचने स्मृते ॥ ८१ ॥

निमित्तादिकसेवायां— निमित्तमष्टविधं । उक्तं च—

> वंजणमग च सरं छिन्न भोम च अतरिक्ख च ।
> लक्खण सिविण च तहा अट्ठविहं होइ णिमित्तं ॥ इति ।

तस्य आदिशब्देन वैद्यकविद्यामंत्राणामपि उपसेवने समुपजीवने सति ।

सोपस्थानोपवासनं—सोपस्थानं सप्रतिक्रमणं उपवासनमुपवासः प्रायश्चित्तं भवति । सूत्रार्थाविनयाद्येषु—सूत्रं आगमपाठः, अर्थोऽभिधेयं, तयोरविनयाद्येषु अविनयनिन्हवबहुमानक्षेत्रकालाद्यशोधनप्रमुखदोषेषु, अथवा सूत्रार्थमप्रश्नयत्तेत् कथमयमपमर्थो (?) भवद्भिर्निर्णीत इति वैयात्येनोपाद्दानस्यायं दण्डः । अंगोत्सर्गालोचने—अंगोत्सर्गः कायोत्सर्गः, आलोचना च इत्येते द्वे प्रायश्चित्ते । स्मृते—कथिते ॥ १८१ ॥

सूत्रार्थदेशने शैक्ष्येऽसमाधानं वितन्वतः ।
चतुर्थं निन्हवेऽप्येवमाचार्यस्यागमस्य च ॥ ८२ ॥

सूत्रार्थदेशने—सूत्रार्थयोर्देशने उपदेशे कथने विशेषभूते शैक्षके । असमाधान—संक्लेशं । वितन्वतः—कुर्वत. । चतुर्थं—उपवासः प्रायश्चित्तं । निन्हवेऽप्येवं—निन्हवेऽपि निन्हुतौ च । एव—एवं उपवास एव विशुद्धिर्भवति । आचार्यस्य—गणेन्द्रस्य । आगमस्य च—श्रुतस्यापि ॥ ८२ ॥

संस्तराशोधने देये कायोत्सर्गविशोषणे ।
शुद्धेऽशुद्धे क्षमा पंचाहोऽप्रमादिप्रमादिनोः ॥ ८३ ॥

संस्तराशोधने—संस्तरस्याशोधनेऽतात्पर्ये सति । देये—दातव्ये । कायोत्सर्गविशोषणे—कायोत्सर्गः तनूत्सर्गः, विशोषणमुपवास इत्येते द्वे । शुद्धे—शुद्धप्रदेशे । अशुद्धे—अप्रासुकप्रदेशे । क्षमा—क्षमणं । पचाहः—पंचकं । अप्रमादिप्रमादिनोः—अप्रमादिनः प्रमादिनश्च । प्रासुकप्रदेशे प्रसुप्तस्य संस्तरमशोधयतः साधोरप्रमत्तस्य कायोत्सर्गः प्रायश्चित्तं । प्रमादिनः उपवासः । अप्रासुकक्षेत्रे प्रसुप्तस्योपवासोऽप्रमत्तस्यः । (प्रमत्तस्य) कल्याणं भवतीति यथासंख्यं योज्यम् ॥ ८३ ॥

लोहोपकरणे नष्टे स्यात्क्षमा कुड्मानतः ।
केचित्क्षमां कुर्वन्त्येकं कायोत्सर्गः परोपधौ ॥ ८४ ॥

लोहोपकरणे—अयोमयोपधौ सूचीनखरदनक्षुरप्रमुखे । नष्टे—अपलापिते सति । स्यात्—भवेत् । क्षमा—उपवासः प्रायश्चित्तं । अंगुलमानतः—अंगुलप्रमाणेन । यावन्ति तस्य नष्टलोहोपकरणस्याङ्गुलानि तावन्ति क्षमणानि प्रायश्चित्तं भवति । केचिद्घनाङ्गुलैरूचुः—केचिदाचार्याः घनाङ्गुलैस्तस्य लोहोपकरणस्य घनीकृतस्य यावन्ति अगुलानि भवन्ति तावन्ति क्षमणानि सन्तीत्यूचुर्जगदु. कथितवन्त. । कायोत्सर्गः परोपधौ—परस्यान्यस्य च(व)कलकप्रतिलेखनकमण्डलुप्रभृतेरुपधेरुपकरणस्य नाशे सति कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त भवति ॥ ८४ ॥

रूपाभिघातने चित्तदूषणे तनुसर्जनम् ।
स्वाध्यायस्य क्रियाहानावेवमेव निरुच्यते ॥ ८५ ॥

रूपाभिघातने—आलिखितमनुष्यादिरूपस्य प्रतिबिंबस्य अभिघातने परिमार्जने कृते सति । चित्तदूषणे—विषयाभिलाषादिदुष्परिणामोत्पत्तौ च सत्या । तनूत्सर्जनं—कायोत्सर्ग. प्रायश्चित्तं । स्वाध्यायस्य क्रियाहानौ—स्वाध्यायक्रियां श्रुतभक्तिपूर्वां विधाय आगमपदजनपरिपठनविधानस्य केनचित्कारणेनाऽकरणे सति । एवमेव—पूर्वोक्तक्रमेणैव कायोत्सर्ग एव प्रायश्चित्त । निरुच्यते—निश्चीयते ॥ ८५ ॥

योऽप्रियङ्करणं कुर्यादनुमोदेत चाथवा ।
दूरस्थोऽसौ जिनाज्ञायाः षष्ठं सोपस्थितिं व्रजेत् ॥ ८६ ॥

यः—यः कश्चित् साधुः । अप्रियङ्करणं—अप्रियकरणमनिष्टविधानं स्वाध्यायनियमवन्दनादिक्रियाणां हीनादिकरण । कुर्यात्—करोति । अनुमोदेत च—अनुमन्येत च । अथवा—अहोस्वित् । दूरस्थोऽसौ जिनाज्ञायाः—जिनागमात् तत्रस्थो बहिर्भूतः; असौ स साधु पूर्वोक्तः । षष्ठं सोपस्थितिं व्रजेत्—सोपस्थानं षष्ठं षष्ठप्रायश्चित्तं व्रजेद्गच्छति प्राप्नोति ॥ ८६ ॥

१ सोऽपि स्थितिं इति पाठः पुस्तके टीकानुसारेण परिवर्तित. ।

तृणकाष्ठकवाटानामुद्घाटनविघट्टने ।
चातुर्मास्याश्चतुर्थं स्यात् सोपस्थानमवस्थितिम् ॥ ८७ ॥

तृणकाष्ठकवाटानां—तृणकाष्ठकवाटकादीनां वस्तूनां । उद्घाटने—विवरणे च । विघट्टने—सम्बन्धे च कृते सति । चातुर्मास्याः—चतुर्भ्यो मासेभ्योऽनन्तरं । चतुर्थं—उपवासः । स्यात्भवेत् । सोपस्थानं—सप्रतिक्रमणं— । अवस्थितिं—निश्चित ध्रुवम् ॥ ८७ ॥

शश्वद्विशोधयेत् साधुः पक्षे पक्षे कमण्डलुम् ।
तदशोधयतो देयं सोपस्थानोपवासनम् ॥ ८८ ॥

शश्वत्—सर्वकालं । विशोधयेत्—अन्तः प्रक्षालयेत् सम्मूर्च्छनानिराकरणाय । साधुः—मुनिः । पक्षे पक्षे—प्रतिपक्ष । कमण्डलुं—जलकुण्डिकां । तदशोधयतः—तत्कमण्डलुं अशोधयतः अनिर्लेपयतः । देय—दातव्यं । सोपस्थानोपवासनं—सोपस्थानं सप्रतिक्रमणं, उपवासनं उपवासः ॥ ८८ ॥

मुखं क्षालयतो भिक्षोरुदविन्दुर्विशेन्मुखे ।
आलोचना तनूत्सर्गः सोपस्थानोपवासनम् ॥ ८९ ॥

मुख—आस्यं । क्षालयतो—धावयतः सतः । भिक्षोः—साधोः । उदविन्दुः—उदकाविन्दुः । विशेत्—यदि प्रविशति । मुखे—वक्त्रे । तदानीं आलोचना प्रायश्चित्तं । तनूत्सर्ग—कायोत्सर्ग. । सोपस्थानोपवासनं—सोपस्थान सप्रतिक्रमणं, उपवासनं उपवासः, एतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति ॥ ८९ ॥

आगन्तुकाश्च वास्तव्या भिक्षाशय्यौषधादिभि. ।
अन्योन्यागमनाद्यैश्च प्रवर्तन्ते स्वशक्तितः ॥ ९० ॥

आगन्तुकाः—प्राघूर्णका । वास्तव्याश्च—स्थायिनोऽपि यतयः । भिक्षाशय्यौषधादिभिः—भिक्षा चर्या, शयनं संस्तरः, औषधं भेषज,

तैः कृत्वा। आदिशब्देन आप्रस्ता (पृच्छा) लोचनाव्याख्यानवात्सल्यसं-भाषणादिभिरपि। अन्योन्यागमनाद्यैश्च—परस्परसंकाशं गमनागमनविन-याभ्युत्थानप्रभृतिभिश्च प्रकारैः। प्रवर्तन्ते—चेष्टन्ते। स्वशक्तितः—आत्मशक्त्या सर्वसामर्थ्यात्॥ ९०॥

विधिमेवमतिक्रम्य प्रमादाद्यः प्रवर्तते।
तस्मात् क्षेत्रादसौ वर्षमपनेयः प्रदुष्टधीः॥ ९१॥

विधि—विधानक्रम। एवं—एवंविध। अतिक्रम्य—उल्लंघ्य। प्रमादात्—शैथल्यात्। यो—यतिः। प्रवर्तते—चेष्टते। तस्मात् क्षेत्रादसौ—असौ स साधुः, तस्मात्तत, क्षेत्राद्विषयात्सकाशात्। वर्षं—संवत्सरमात्रं कालं। अपनेय.—निर्घाटयितव्यः। प्रदुष्टधीः—दुष्टमतिः॥ ९१॥

शिलोदराधिके सूत्रमधीते प्रविलिख्य यः।
चतुर्थालोचने तस्य प्रत्येक दण्डनं मतम्॥ ९२॥

शिलोदरादिके—शिलायां दृषदि पाषाणे, उदरे ऊरौ, आदिशब्देन भूमिबाहुजंघाप्रभृतावपि। सूत्रं—आगमनिबन्धं। अधीते—यतिः। प्रवि-लिख्य यः—। चतुर्थालोचने—चतुर्थमुपवास, आलोचना दोषप्रकाशना एते द्वे। तस्य—पुर्वोक्तस्य। प्रत्येकं—यथासंख्य। दण्डन—प्रायश्चित्तं। मत—अभ्युपगत। शिलातलभूप्रदेशादिषु उपवासः। उदरोरुजघाबाव्हादिषु आलोचना॥ ९२॥

जातिवर्णकुलोनेषु भुंक्तेऽजानन् प्रमादृत।
सोपस्थानं चतुर्थं स्यान्मासोऽनाभोगतो मुहुः॥ ९३॥

जातिवर्णकुलोनेषु—जातिर्मातृपक्षः, वर्णाः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः, कुलं वंशः पितृपक्षः, तैरूनेषु च्युतेषु विषयभूतेषु। कुलजातिविकला

१ प्रभृतावऽप्यसूत्र इति पाठः पुस्तके।

वैश्यादयः, वर्णविकलाः सूतादयः, तेषु यदि । भुंक्ते—अभ्यवहरति । अजानन्—अनवबुद्ध्यमानः । प्रमादतः—कथंचिदेकवारं । तदानीं तस्य, सोपस्थानं—सप्रतिक्रमणं । चतुर्थं—उपवासः । स्यात्—भवेत् । मासः—मासिकं प्रायश्चित्तं भवति । अनाभोगतः[1]—अनाभोगेन अप्रकाशेन । मुहुः—पुनः पुनः, भुंजानस्य साधोः ॥ ९३ ॥

जातिवर्णकुलोनेषु भुंजानोऽपि मुहुर्मुहुः ।
साभोगेन मुनिर्नूनं मूलभूमिं समश्नुते ॥ ९४ ॥

जातिवर्णकुलोनेषु—जातिवर्णकुलगर्हितेषु । भुंजानोऽपि—अश्नन् । मुहुर्मुहुः—पौनःपुन्यात् । साभोगेन—सप्रकाशतः । मुनिः—साधुः । नूनं—निश्चितं । मूलभूमि—मूलस्थानं । समश्नुते—प्राप्नोति ॥ ९४ ॥

चतुर्विधमथाहारं देयं यः प्रतिषेधयेत् ।
प्रमादाद्दुष्टभावाच्च क्षमोपस्थानमासिके ॥ ९५ ॥

चतुर्विधमथाहारं—अथ अथवा, चतुर्विधं चतुष्प्रकारं अशनपान-खाद्यस्वाद्यभेदात्, आहारं भोजनं । देयं—दीयमानं । यः—कश्चिन्मुनिः । प्रतिषेधयेत्—निवारयति । प्रमादात्—विस्मरणात् । दुष्टभावाच्च—दौर्जन्यात्, तदा प्रत्येकं । क्षमा—उपवासः । उपस्थानमासिके—उपस्थानं प्रतिक्रमणं, मासिकं पंचकल्याणं एते द्वे । प्रमादाद्विनिवारयतः उपवासः प्रायश्चित्तं । प्रद्वेषात् सप्रतिक्रमणं सामायिकं (मासिकं) भवति ॥ ९५ ॥

ज्ञानोपध्यौषधं वाथ देयं यः प्रतिषेधयेत् ।
प्रमादेनापि मासः स्यात् साध्वावासमथो मुहुः ॥ ९६ ॥

ज्ञानोपध्यौषधं वाथ—अथवा ज्ञानोपधिं ज्ञानोपकरणं पुस्तकं, औषधं भेषजं । देयं—वितीर्यमाणं । यः—पुरुषः । प्रतिषेधयेत्—निषेधयति ।

---

1 अनाभोगेन इति पाठ पुस्तके ।

प्रमादेनापि—एकवारमपि तस्य । मासः स्यात्—पंचकल्याणं प्रायश्चित्तं भवति । साध्वावासमथो मुहुः—अथो अथवा, साध्वावास साधूनां यतीनां देयमावासं आवसति, मुहुः पुनः पुनः, यदि निषेधयति तदापि मासिकमेव भवति ॥ ९६ ॥

चतुर्विधं कदाहारं तैलाम्लादि न वल्भते ।
आलोचना तनूत्सर्ग उपवासोऽस्य दण्डनम् ॥ ९७ ॥

चतुर्विधं—चतुर्भेद । कदाहार—कदन्न । तैलाम्लादि—तैलकंजिकादि, दीयमानं व्याधिप्रभृतिकारणमन्तरेणापि । न वल्भते—न भुंक्ते । आलोचना—। तनूत्सर्गः—कायोत्सर्ग. । उपवासश्चेत्येतानि । अस्य—एतस्य पुरुषस्य । दण्डन—प्रायश्चित्त भवति ॥ ९७ ॥

वैयावृत्यानुमोदेऽपि तद्द्रव्यस्थापनादिके ।
पथ्यस्यानयने सम्यक् सप्ताहादुपसंस्थितिः ॥ ९८ ॥

वैयावृत्यानुमोदेऽपि—वैयावृत्य शरीराहारौषधादिभिरुपकारकरणं तस्यानुमोदे मन्दग्लानादिकारणसमाश्रयादनुमतौ च सत्यां । तद्द्रव्यस्थापनादिके—तस्य वैयावृत्त्यस्य, द्रव्याणा भाजनप्रभृतीना , स्थापनादिके निधानधावनबन्धनादिक्रियाविशेषे कृते । पथ्यस्यानयने आतुरोचिताहारविशेषोपढौकने च । सम्यक्—प्रयत्नेन । सप्ताहात्—सप्तरात्रादनन्तरं । उपसंस्थितिः—उपस्थानं प्रतिक्रमण प्रायश्चित्तं भवति । उपवासोऽनुक्तोऽपि लभ्यते तदविनाभावात् प्रतिक्रमणायाः ॥ ९८ ॥

स्वच्छन्दशयनाहार प्रमाद्यन् करणे व्रते ।
द्वयोरप्यविशुद्धित्वाद्धारणीयस्त्रिरात्रतः ॥ ९९ ॥

स्वच्छन्दशयनाहारः—स्वस्यात्मन , छन्देनेच्छया, शयनशीलपुरुषः स्वमनीषिकया भोजनशीलश्च । प्रमाद्यन्—प्रमादं विदधच्च । करणे व्रते—करणं क्रिया त्रयोदशविधा पंचनमस्काराः षडावश्यकानि आसेधिका

निषेधिकेति[1], व्रतानि पंचमहाव्रतानि तेष्वनादरं वितन्वानः। द्वयोरपि—कारकोपेक्षकयोः। अविशुद्धित्वात्—सदोषित्वाद्धेतोः। वारणीयः—निषेद्धव्यः। त्रिरात्रतः—दिनत्रयानन्तरम्॥ ९९॥

भूरिमृज्जलतः शौचं यो वा साधुः समाचरेत्।
सोपस्थानोपवासोऽस्य वस्तिवर्ण्यादिकेष्वपि॥ १००॥

भूरिमृज्जलत—प्रचुरमृतिकया बहुपानीयेन च। शौचं—विशुद्धिं। यो वा साधुः—वा अथवा, यः साधुर्यो मुनिः। समाचरेत्—(करोति) (वस्तिवर्ण्यादिकेष्वपि)—वमनविरेचनादिचिकित्साकरणे च। (अस्य—साधो.)। सोपस्थानोपवासो—भवति॥ १००॥

चण्डालसंकरे स्पृष्टे पृष्टे देहेऽपि मासिकम्।
तदेव द्विगुणं भुक्ते सोपस्थानं निगद्यते॥ १०१॥

चण्डालसंकरे—चाण्डालादिभिः संकरे व्यतिकरे, सस्पृष्टे सति भवति विद्यमाने। पृष्टे देहेपि—शरीरे पृष्टेऽपि उपाचिंतेऽपि। मासिक—पंचक-ल्याणं प्रायश्चित्तं। (तदेव) द्विगुणं भुक्ते—अजानानेन चाण्डाला-दीना हस्तेन तद्दर्शने वा अभ्यवहृते सति (तदेव पूर्वोक्तं प्रायश्चित्तं। द्विगुणं) सोपस्थानं—सप्रतिक्रमण। निगद्यते—अभिधीयते॥ १०१॥

असन्तं वाथ सन्तं वा छायाघातमवाप्नुयात्।
यत्र देशे स मोक्तव्यः प्रायश्चित्तं भवेदपि॥ १०२॥

असन्तं वा—अविद्यमानं वा। अथ वा सन्तं—सद्भूतं। छायाघातं—माहात्म्यविनाशनं अपमानं। आप्नुयात्—आलभते। यत्र—यस्मिन्। देशे—विषये। स मोक्तव्यः—स पूर्वोक्तो देशः मोक्तव्यः परिहार्यः (प्रायश्चित्त भवेदपि)—प्रायश्चित्तं च तथा स्यात्॥ १०२॥

---

१ निषधेति पुस्तके।

दोषानालोचितान् पापो यः साधुः संप्रकाशयेत् ।
मासिकं तस्य दातव्यं निश्चयोद्दण्डदण्डनम् ॥ १०३ ॥

दोषान्—अपराधान् । आलोचितान्—निवेदितान् । पापः—पापिष्ठः । यः—कश्चित् । साधुः— । संप्रकाशयेत्—लोकेभ्यः परिकथयेत् तस्य मर्द विदध्यात् । मासिकं तस्य दातव्य—पंचकल्याण तस्य साधोर्देयं । निश्चयोद्दण्डदण्डनं—निश्चयेन नियमेन, उद्दण्डं उद्धृत्तं, दण्डनं प्रायश्चित्तम् ॥ १०३ ॥

स्वकं गच्छं विनिर्मुच्य परं गच्छमुपाददन् ।
अर्धेनासौ समाच्छेद्यः प्रव्रज्यायाः विसंशयम् ॥ १०४ ॥

स्वकं—स्वकीयं यत्र दीक्षितः तं । गच्छं—गणं । विनिर्मुच्य—परित्यज्य । पर गच्छमुपाददत्— गृह्णन् । अर्द्धेनासौ समाछेद्यः प्रवज्याया·—दीक्षाया अर्द्धांशेन, असौ स साधुः, समाछेद्यः खण्डयितव्यः । विसंशयं—निःसन्देहम् ॥ १०४ ॥

यः परेषां समादत्ते शिष्य सम्यक् प्रतिष्ठितम् ।
मासिकं तस्य दातव्यं मार्गमूढस्य दण्डनम् ॥ १०५ ॥

यः—कश्चिदाचार्यः । परेषा—अन्येषां साधूनां । समादत्ते—स्वीकरोति । शिष्यं—विनेयमन्तेवासिन । सम्यक्प्रतिष्ठितं—सम्यग्विधानेन रत्नत्रये व्यवस्थितं । मासिकं तस्य दातव्यं—तस्य पूर्वोक्तस्य परशिष्यादायिन', मासिकं पंचकल्याणं, दातव्यं देयं । मार्गमूढस्य दण्डनं—प्रायश्चित्तम् ॥ १०५ ॥

ब्राह्मणा· क्षत्रिया वैश्या योग्याः सर्वज्ञदीक्षणे ।
कुलहीने न दीक्षास्ति जिनेन्द्रोद्दिष्टशासने ॥ १०६ ॥

ब्राह्मणाः—विप्रा' । क्षत्रियाः—राजानः । वैश्या—वणिजः, कृतयुगादिव्यवस्थापितवर्णत्रयसमुत्पन्नाः । योग्या·— उचिता अर्हाः । सर्वज्ञदी-

क्षाया—निर्ग्रन्थलिंगस्य । कुलहीने—कुलविकले वर्णत्रयपरिच्युते । न दीक्षास्ति—निर्ग्रन्थलिंगं न भवति । जिनेन्द्रोद्दिष्टशासने—जिनेन्द्रोपदिष्टदर्शने । उक्तं च—

त्रिषु वर्णेष्वेकतम कल्याण (णा) ग तपःसहो वयसा ।
सुमुख कुत्सारहितो दीक्षाग्रहणे पुमान् योग्य ॥ इत्यादि ।

न्यक्कुलानामचेलैकदीक्षादायी दिगम्बरः ।
जिनाज्ञाकोपनोनन्तसंसारः समुदाहृतः ॥ १०७ ॥

न्यक्कुलाना—नीचकुलानां वर्णत्रयबहिर्भूताना । अचेलैकदीक्षादायी—अचेला निर्ग्रन्था, एका सकलजगत्प्रधानभूता, दीक्षा प्रव्रज्या ददातीत्येव शील. । दिगम्बर.—साधुः । जिनाज्ञाकोपनः सर्वज्ञवचनप्रतिकूलः । अनन्तससार.—अपर्यन्तभवसन्ततिः । समुदाहृत.—परिकथित ॥ १०७ ॥

दीक्षां नीचकुलं जानन् गौरवाच्छिष्यमोहतः ।
यो ददात्यथ गृह्णाति धर्मोद्दाहो द्वयोरपि ॥ १०८ ॥

दीक्षा—प्रव्रज्यां । नीचकुलं—भ्रष्टकुल । जानन्—अवगच्छन्नपि । गौरवात्—ऋद्धिगर्वात् । शिष्यमोहतः—शिष्यस्नेहात् । यो—य. साधुः । ददाति—निर्ग्रन्थलिंगं प्रयच्छति । अथ गृह्णाति—अथवा यः पुरुषो निर्ग्रन्थरूपमाददाति । तयोः, धर्मोद्दाह.—चतुर्वर्णोपतप्तिः धर्मदूषण । द्वयोरपि—उभयोश्च आदातृगृहीत्रोर्भवति ॥ १०८ ॥

अजानाने न दोषोऽस्ति ज्ञाते सति विवर्जयेत् ।
आचार्योऽपि स मोक्तव्यः साधुवर्गैरतोऽन्यथा ॥ १०९ ॥

अतोऽन्यथा—अत एतस्मान्न्यायात् सकाशात्, अन्यथा अन्येन विधिना । स—पूर्वोक्त । आचार्य.—सूरि. । मोक्तव्य.—त्याज्यः । साधुवर्गै.—साधुसमूहै. ॥ १०९ ॥

---

१ पूर्वार्धस्य टीकापाठ त्रुटितोऽवभाति, सुगम ।

शिष्ये तस्मिन् परित्यक्ते देयो मासोऽस्य दण्डनम् ।
चाण्डालाभोज्यकारूणां दीक्षणे द्विगुणं च तत् ॥ ११० ॥

शिष्ये—विनेये । तस्मिन्—पूर्वोद्दिष्टे अकुलीने । परित्यक्ते—परिहृते सति । देयो मासोऽस्य—अस्य एतस्याचार्यस्य, देयो दातव्यः, मासो मासिक प्रायश्चित्त । चाण्डालाभोज्यकारूणा—चाण्डालाना मातंगादीना, अभोज्य-कारूणा अभोज्याना कारूणा च रजकवरुटकल्लपालप्रभृतीना च । दीक्षणे—दीक्षादाने सति । द्विगुणं च तत्—पूर्वोक्तं मासिक प्रायश्चित्त द्विगुण भवति द्विर्दातव्य भवति ॥ ११० ॥

अनाभोगेन चेत्सूरिर्दोषमाप्नोति कुत्रचित् ।
अनाभोगेन तच्छेदो वैपरीत्याद्विपर्यय ॥ १११ ॥

अनाभोगेन—अप्रकाशेन । चेत्—यदि । सूरिः—आचार्यः । दोष—अपराध । आप्नोति । कुत्रचित्—क्वचिदपि तदा । अनाभोगेन तच्छेदः—तस्य आचार्यस्य च्छेद प्रायश्चित्त, अनाभोगेनाप्रकाशेनैव भवति । वैपरी-त्याद्विपर्यय —वैपरीत्यात्प्रत्ययात्, विपर्ययः विपर्यासो भवति—साभोगतः साभोगेनैव प्रायश्चित्त भवति ॥ १११ ॥

क्षुल्लकानां च शेषाणां लिंगप्रभ्रशने सति ।
तत्सकाशे पुनर्दीक्षा मूलात् पाषडिचेलिनाम् ॥ ११२ ॥

क्षुल्लकाना—सर्वोत्कृष्टश्रावकाणा । शेषाणा च—स्त्रीणामपि आर्याणां । लिंगप्रभ्रशने—केनापि कारणेन दीक्षाभंगे । सति—विद्यमाने । तत्सकाशे पुनर्दीक्षा—यस्य पार्श्वे पुरा प्रव्रज्या समुपात्ता । तस्यैव सकाशे समीपे पुनरपि दीक्षोपादान भवति नान्यस्याचार्यस्याभ्यासे । मूलात् पाषडिचे-लिना—लिंगवर्जिताना अन्यलिंगिना, चेलिना गृहस्थानां मिथ्यादृष्टीनां श्रावकाणां च, मूलात् मूलप्रभृत्येव दीक्षा भवति ॥ ११२ ॥

कुलीनक्षुल्लकेष्वेव सदा देयं महाव्रतम् ।
सल्लेखनोपरूढेषु गणेन्द्रेण गुणेच्छुना ॥ ११३ ॥

कुलीनक्षुल्लकेष्वेव—कुलीनेषु कुलपुत्रेषु ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यविशुद्धोभयकुलसमुत्पन्नेषु व्यङ्गादिकारणसंश्रयात् क्षुल्लकव्रताधिष्ठितेषु सत्सु । सदा—सर्वकालं । देयं—दातव्यं । महाव्रत—निर्ग्रन्थलिंग । सल्लेखनोपरूढेषु—संस्तरमाश्रितेषु नान्येषु क्षुल्लकेषु । गणेन्द्रेण—गणधारिणा । गुणेच्छुना—गुणाभिलाषिणा ॥ ११३ ॥

ऋषि-प्रायश्चित्तम् ।

साधूनां यद्वदुद्दिष्टमेवमार्यागणस्य च ।
दिनस्थानत्रिकालोनं प्रायश्चित्त समुच्यते ॥ ११४ ॥

साधूना—ऋषीणा । यद्वत्—यथैव । उद्दिष्ट—प्रतिपादित । एवमार्यागणस्य च—आर्यागणस्यापि संयतिकासमूहस्य च एवमेव प्रायश्चित्तं भवति । अयं तु विशेष, दिनस्थानत्रिकालोनं—दिनस्थानं दिवसप्रतिमायोग', त्रिकालः त्रिकालयोग., ताभ्यामून हीन रहितं । प्रायश्चित्त—विशुद्धि । समुच्यते—अभिधीयते ॥ ११४ ॥

समाचारसमुद्दिष्टविशेषभ्रंशने पुनः ।
स्थैर्यास्थैर्यप्रमादेषु दर्पतः सकृन्मुहुः ॥ ११५ ॥

समाचारसमुद्दिष्टविशेषभ्रशने पुन—समाचारे ये केचन कार्याकार्यमन्तरेण परगृहगमनरोधनस्नपनपचनषड्धिारभप्रभृतयो विशेषास्तेषा भ्रंशे स्खलने तु सति । स्थैर्यास्थैर्यप्रमादेषु—स्थैर्ये स्थिरत्वे, अस्थैर्ये अस्थिरत्वे, प्रमादे कथचिद्दोषसम्पन्ने । दर्पतः—अहंकाराच्च । सकृत्—एकवारं । मुहुः—पुन' पुन । एतेषु यथासख्य प्रायश्चित्तानि वक्ष्यन्ते ॥ ११५ ॥

कायोत्सर्ग क्षमा क्षान्तिः पंचकं पंचक क्रमात् ।
षष्ठं षष्ठं ततो मूलं देयं दक्षगणेशिना ॥ ११६ ॥

कायोत्सर्गः—तनूत्सर्ग. । क्षमा—उपवास' । क्षान्तिः—क्षमण । पंचकं—कल्याणं । पुनः, पचकं— । क्रमात्—क्रमेण । षष्ठं—षष्ठं प्रायश्चित्त । पुनरपि षष्ठमेव । ततो मूलं—तदनन्तरं मूलं पंचकल्याण । देयं—दातव्य । दक्षगणशिना—निपुणगणेन्द्रेण ॥ ११६ ॥

---

१ समाक्षराण्येव पुस्तके ।

मृज्जलादिप्रमां ज्ञात्वा कुड्यादीनां प्रलेपने ।
कायोत्सर्गादिमूलान्तमार्याणां प्रवितीर्यते ॥ ११७ ॥

मृज्जलादिप्रमां—मृन्मृत्तिका, जलं पानीयं, आदिशब्देनाग्निवायुप्रत्येकानन्तवनस्पतीनां च, प्रमा प्रमाणं । ज्ञात्वा—अवबुध्य । कुड्यादीनां भित्तिभूमिभेषजभाण्डादिद्रव्याणां । प्रलेपने—उपबृंहने कृते सति । प्रलेपनग्रहणमुपलक्षणमात्रं तेनाग्निसमारंभादिक्रियाविशेषेषु च सत्सु परिमाणमवगम्य देयं प्रायश्चित्तं । कायोत्सर्गादिमूलान्तं—कायोत्सर्गस्तनूत्सर्गः, तदादि तत्प्रभृति, मूलं पंचकल्याणं, तदन्तं तत्पर्यवसानं । आर्याणां—संयतिकानां । प्रवितीर्यते—प्रदीयते । बिडालपदादिमात्रेषु मृत्तिकादिषु कायोत्सर्गं । सर्वोत्कृष्टं पंचकल्याणं भवति मध्ये विकल्पः । उक्तं च—

> पुढविं विडालपयमेत्तमक्खणतो जलजलिं तह य ।
> दीवयसिहापमाणं हुयामणं विज्जवतो य ॥ १ ॥
> वियणेण वीयतो वाराओ दुण्णि तिण्णि वा होई ।
> एक्क हि य बहुदासे काउस्सग्गो वि तं लहई ॥ २ ॥

वस्त्रस्य क्षालने घाते विशोषस्तनुसर्जनम् ।
प्रासुकतोयेन पात्रस्य धावने प्रणिगद्यते ॥ ११८ ॥

वस्त्रस्य—चीवरस्य । क्षालने—धावने । घाते—अपां अप्कायिकानां घाते विराधने सति । विशोषः—विशोषणमुपवासः प्रायश्चित्तं । तनुसर्जनं—कायोत्सर्गः । प्रासुकतोयेन—प्रासुकपानीयेन । पात्रस्य—भिक्षाभाण्डस्य । धावने—प्रक्षालने कृते सति । प्रणिगद्यते—परिकीर्त्यते इति यथाक्रमं योज्यम् ॥ ११८ ॥

वस्त्रयुग्मं सुबीभत्सलिंगप्रच्छादनाय च ।
आर्याणां संकल्पेन तृतीये मूलमिष्यते ॥ ११९ ॥

वस्त्रयुग्मं—वस्त्रयुगलं । सुबीभत्सलिंगप्रच्छादनाय—सुबीभत्सं सुष्ठु बीभत्समदर्शनीयं, लिंगं रूपं, तस्य प्रच्छादनाय पिधानार्थं । आर्याणां—

तपस्विनीनां, संकल्पेन—संप्रकल्पिते भूते । तृतीये मूलमिष्यते—तृतीये वस्त्रे गृहीते सति आर्याणां, मूलं मासिकं, [illegible]यते ॥ ११९ ॥

याचितायाचितं वस्त्रं भैक्ष्यं च न [illegible] ।
दोषाकीर्णतयार्याणामप्रासुकविवर्जितम् ॥ १२० ॥

याचितं—भिक्षितं, अयाचित—स्वयमेवोपलब्ध च । वस्त्रं—अम्बरं । भैक्ष्यं—भिक्षाणा समुहश्च । न निषिध्यते—न निवार्यते । दोषाकीर्णतया—दोषबाहुल्येन हेतुभूतेन । आर्याणां—विरतिकानां । अप्रासुकविवर्जितं—सावद्यविरहितम् ॥ १२० ॥

तरुणी तरुणेनामा शयनं गमनं स्थितिम् ।
विदधाति ध्रुवं तस्याः क्षमाणां त्रिंशदाहृता ॥ १२१ ॥

तरुणी—युवतिर्यौवनस्था । तरुणेन—यूना । अमा—सह । शयनं—स्वापं । गमन—यान । स्थिति—स्थान कायोत्सर्ग सहासनं वा । या आर्या, विदधाति—करोति । ध्रुवं—निश्चित । तस्या.—पूर्वोक्ताया सयतिकायाः । क्षमाणां—क्षमणाना । त्रिंशत्, आहृता—उदाहृता परिकथिता ॥ १२१ ॥

तारुण्यं च पुन॰ स्त्रीणां षष्ठिवर्षाण्यनूदितम् ।
तावन्तमपि ताः कालं रक्षणीयाः प्रयत्नत. ॥ १२२ ॥

तारुण्य च पुनः—तरुणत्वं यौवन तु । स्त्रीणा—योषाणां । षष्ठिवर्षाणि—षष्ठिसवत्सरान् यावत् । अनूदितं—अनूक्त कथित । तावन्तमपि ताः काल—तावन्तमपि तावन्त च, ता आर्यका , काल समय षष्ठिवर्षप्रमाणं । रक्षणीयाः—पालनीया । प्रयत्नत.—तात्पर्यात् ॥ १२२ ॥

दर्पेण संयुताथार्या विधत्ते दन्तधावनं ।
रसानां स्यात् परित्यागश्चतुर्मासानसंशयम् ॥ १२३ ॥

दर्पेण—अहंकारेण । संयुता—समन्विता । अथ—अथवा । आर्या—विरतिका । विधत्ते—करोति । दन्तधावनं—दन्तघर्षण । यदि तदा ।

रसानां स्यात्—भवेत् । परित्यागः—परिवर्जनं । चतुर्मासान् (चतुरः) त्रिंशद्रात्रान् यावत् ... —नि सन्देहम् ॥ १२३ ॥

अब्रम्ह[illegible] क्षिप्रमपनेयापि देशतः ।
सा विशुद्धिबहिर्भूता कुलधर्मविनाशिका ॥ १२४ ॥

अब्रह्मसंयुता—अब्रह्मणा मैथुनेन संयुता संगता । क्षिप्र—शीघ्र । अपनेया—निर्घाटनीया । अपि देशत.—आस्ता तावद्ग्रामादेः देशादपि तद्विषयादपि उद्वासनीया । सा विशुद्धिबहिर्भूता—सा पूर्वोक्ता संयतिकारूपधारिणी, विशुद्धिबहिर्भूता प्रायश्चित्तविवर्जिता । कुलधर्मविनाशिका—कुल गुरुकुल च धर्मो जिनशासन तयोर्विनाशिका दूषिका ॥ १२४ ॥

तद्दोषभेदवादोऽपि पण्डितानां न कल्पते ।
अन्योक्तं लक्षणीयं न तत्प्रहेय प्रयत्नतः ॥ १२५ ॥

तद्दोषभेदवादोऽपि—तस्य पूर्वोक्तसंयमविषयस्य दोषस्य भेदवादः प्रकाशन च । पण्डिताना—सम्यग्ज्ञानवता पुरुषाणा । न कल्पते—न युज्यते । अन्योक्त लक्षणीय न—अन्यैरपि कैश्चिदुक्तमभिहितमपि लक्षणीय न—न लक्षणीय न लक्षयितव्य नोपलक्षणीय । तत्प्रहेय—तज्जल्पनक, प्रहेयं परित्याज्यमेव । प्रयत्नत.—अत्यन्ततात्पर्यात् ॥ १२५ ॥

यतिरूपेण वाच्याप्ता चेदार्यानामधारिका ।
हा ! हा ! कष्ट महापाप न श्रोतुमपि युज्यते ॥ १२६ ॥

यतिरूपेण—सयतनामधारिणा सह । वाच्याप्ता चेत्—यदि वाच्याप्ता वाच्य जल्पनकं, आप्ता प्राप्ता, भवति । आर्यानामधारिका—विरतिकाभिधानवाहिका । हा हा कष्ट—हा हा धिग्धिक्, कष्ट निकृष्ट । महापापं—महापातक । तत्तेन, श्रोतुमपि न युज्यते—आस्ता तावज्जल्पन सप्रश्नो वा श्रोतुमपि आकर्णयितुमपि न युज्यते न कल्पते न वर्तते ॥ १२६ ॥

उभयोरपि नो नाम ग्राह्य धिङ्नीचकर्मणोः ।
अन्यश्चेत्कोऽपि तद्ब्रूयात् पिधातव्ये ततः श्रुती ॥ १२७ ॥

उभयोरपि—द्वयोरपि रूपधारिणो.। नो नाम ग्राह्यं—नामाभिधानं नो ग्राह्यं नादेय न वक्तव्यं। धिक्—क[illegible]चकर्मणोः—निकृष्ट-चेष्टयोः। अन्यश्चेत्कोऽपि तद्ब्रूयात्—चे[illegible]कोऽपि अपरश्च कश्चित्, तत्पूर्वोक्तं दूषणं, ब्रूयाज्जल्पति। पि[illegible]ती—पिधातव्ये छादयितव्ये, ततस्तदनन्तरं, श्रुती कर्णौ ॥ १[illegible]

स नीचोऽप्यश्नुते शुद्धिं शुद्धबुद्धिः प्रयत्नतः।
देशकालान्तरात्तत्र लोकभावमवेत्य च ॥ १२८ ॥

स'—पूर्वोक्तसंयमरूपानुकारी। नीचोऽपि—अधर्मोऽपि। अश्नुते—प्राप्नोति। शुद्धिं—प्रायश्चित्तं। शुद्धबुद्धिः—विविक्तमति' सन्। प्रयत्नत—प्रयत्नेन सम्यग्विधानेन। देशकालान्तरात्—कालान्तरे महति कालेऽतिक्रान्ते। तत्र लोकभावमवेत्य च—तत्र देशे यत्र प्रायश्चित्तं तस्य प्रदीयते, लोकभाव जनपरिणाम, अवेत्य च परिज्ञायापि अस्मिन् देशे दोष न तावत्कोऽपि परिगृह्णातीति सम्यगवगम्य। अनेन विधानेनास्य विशुद्धिर्विधीयते ॥ १२८ ॥

शपथं कारयित्वाथ क्रियामपि विशेषतः।
बहूनि क्षमाणान्यस्य देयानि गणधारिणा ॥ १२९ ॥

शपथ—कोश। कारयित्वा—विधाप्य। अथ—अनन्तरं। क्रियामपि—प्रतिक्रमण च। विशेषत—सविशेषं। बहूनि क्षमणानि—बहव उपवासा.। अस्य—एतस्य साधो.। देयानि—दातव्यानि। गणधारिणा—गणधरेण ॥ १२९ ॥

द्रव्यं चेद्धस्तगं किंचिद्बन्धुभ्यो विनिवेदयेत्।
तदास्याः षष्ठमुद्दिष्टं सोपस्थान विशोधनम् ॥ १३० ॥

द्रव्य—वित्त। चेत्—यदि। हस्तग—करस्थं। किंचित्—किमपि हिरण्यसुवर्णादि यत्तत्। बन्धुभ्य—स्वजनेभ्यः। विनिवेदयेत्—प्रयच्छति। तदा—तस्मिन् काले। अस्याः—एतस्या आर्याया। षष्ठं—षष्ठ प्राय-

श्चित्त। उद्दिष्टं—कथितं। सोपस्थानं—सप्रतिक्रमणं। विशोधनं—मल-हरणम् ॥ १३० ॥

येन केन [illegible] लब्धं पुनर्द्रव्यं च किंचन।
वैयावृत्यं [illegible] भवेत्तेन प्रयत्नतः ॥ १३१ ॥

येन केनापि—येन केनचिदुपायेन। तत्—पूर्वोक्तं। लब्ध—प्राप्तं। पुनः—पुनरपि भूय.। द्रव्यं च—धनमपि। किंचन—कियदपि। वैयावृत्य प्रकर्तव्य भवेनेन—तेनार्थन, वैयावृत्य धर्मप्राणिनामुपकारः, प्रकर्तव्यं विधेय, भवेत् स्यात्। प्रयत्नत.-प्रयत्नान्निराबाधं। तदेव तस्याः प्रायश्चित्तम् ॥ १३१ ॥

भ्रातरं पितरं मुक्त्वा चान्येनापि सधर्मणा।
स्थानगत्यादिकं कुर्यात् सधर्मा छेदभागपि ॥ १३२ ॥

भ्रातर—सहोदर। पितर—जनक। मुक्त्वा—परित्यज्य। अन्येन—परेण। अपि सधर्मणा—सधर्मणापि आस्ता तावदन्येन पुरुषेण गुरुभ्रात्रापि सह यदि, स्थानगत्यादिक—स्थान कायोत्सर्ग, गतिर्यान मार्ग-गमनं, आदिशब्देनागमन सहस्थितिप्रभृति च एकाकिनी, कुर्यात्—विधत्ते तदानीं, सधर्मा छेदभागपि—आस्ता तावदार्या सधर्मापि गुरुभ्रातापि, छेदभाक् प्रायश्चित्तभागी भवति ॥ १३२ ॥

बहून् पक्षांश्च मासांश्च तस्या देया क्षमा भवेत्।
बलं भाव वयो ज्ञात्वा तथा सापि समाचरेत् ॥ १३३ ॥

बहून्—अनेकान्। पक्षान्—पञ्चदशरात्रान्। मासांश्च—त्रिंशद्रात्रानपि। तस्याः—पूर्वोक्ताया आर्यायाः। देया—दातव्या। क्षमा—क्षमणं। भवेत्—स्यात्। बल—सामर्थ्यं स्थाम। भाव—परिणाम तत्र-मन्दमध्यमविशेषविशिष्टं। वय.—दशां। ज्ञात्वा—अवगम्य। तथा—तेनैव न्यायेन। सापि—प्रागभिहितार्या च। समाचरेत्—कुर्यात् ॥ १३३ ॥

क्षान्त्या पुष्पं प्रपश्यन्त्या [illegible] र्दिनम् ।
आचाम्लनीरसाहारः [illegible] १३४ ॥

क्षान्त्या—आर्यया । पुष्पं—रजः [illegible] क्रमानया । तद्दिनात्—यस्मिन् दिवसे तद्दृष्टं तस्माद्दिनाद् [illegible] भवेत् । चतुर्दिनं—दिनचतुष्टयं । आचाम्लं—असंस्कृत [illegible] नीरसाहारः—निर्गता रसा विकृतयः तिक्तकटुकादयो यस्मात् स नीरसः स चासौ आहारः निर्विकृतिः, यथासिद्धस्य रूक्षाहारस्य भोजनं तक्रेण वा शक्त्यपेक्षया । कर्तव्या—करणीया । चाथवा क्षमा—अथवा क्षमा क्षमणं ॥ १३४ ॥

तदा तस्याः समुद्दिष्टा मौनेनावश्यकक्रिया ।
व्रतारोपः प्रकर्तव्यः पश्चाच्च गुरुसन्निधौ ॥ १३५ ॥

तदा—तस्मिन् काले । तस्याः—आर्यायाः । समुद्दिष्टा—निगदिता । मौनेन—तूष्णीं भावेन । आवश्यकक्रिया—समतास्तववन्दनाप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानकायोत्सर्गाणां षण्णामावश्यकानां करणं । व्रतारोपः—व्रतारोपणं । प्रकर्तव्यः—विधातव्यः । पश्चाच्च—तदनन्तरमस्ति । गुरुसन्निधौ—आचार्यसमीपे ॥ १३५ ॥

स्नानं हि त्रिविधं प्रोक्तं तोयतो व्रतमंत्रतः ।
तोयेन स्याद्गृहस्थानां साधूनां व्रतमंत्रतः ॥ १३६ ॥

स्नानं—सर्वाङ्गशुद्धिः शौचं । हि—यस्मात् । त्रिविधं—त्रिभेदं । प्रोक्तं—परिकथितं । तोयतः—तोयेन जलेन । व्रतमंत्रतः—व्रतेन संयमेन विशुद्धध्यानेन, मंत्रतः मंत्रेण परममंत्रपदोच्चारणैश्च विद्यादिभिः कृत्वा । एवं त्रिप्रकारं स्नानं भवति । तत्र, तोयेन—पानीयेन स्नानं । स्यात्—भवेत् । गृहस्थानां—गृहिणां । साधूनां—यतीनां तु । व्रतमंत्रतः व्रतैर्मंत्रैः स्नानं शौचं भवतीति । इयं परमार्थशुद्धिः । व्यवहारशुद्धिस्तु चाण्डालादिसंस्पर्शे सति व्रतं परिपालयद्भिः साधुभिः जलेनापि विधातव्या ॥ [illegible] ॥

संयतिका-प्रायश्चित्तं ।

श्रमण[illegible]णां तदेव हि ।
द्वयो[illegible]षण्णामर्धार्धहानित ॥ १३७ ॥

श्रमणच्छे[illegible]ना छेदनं प्रायश्चित्त । यच्च—यदेव प्रागुपदिष्ट [illegible]कानां । तदेव हि—तदेव प्रायश्चित्तं भवति क्रमेण । [illegible]द्ययोरुभयोश्च । त्रयाणा—मध्येगतानां च । षण्णा—ततः परं [illegible]णामपि श्रावकाणा । अर्धार्धहानिक्रमेण । एकादश श्रावका भवन्ति । उक्तं च—

> दर्शनोऽणुव्रतश्चैव समामादिक इत्यपि ।
> प्रोषधो विरतश्चैव सचित्ताद्दिनमैथुनात् ॥ १ ॥
> ब्रह्मव्रती निरारंभश्रावको निष्परिग्रह ।
> निरनुज्ञो निरुद्दिष्ट स्यादेकादशवेति स ॥ २ ॥ इति ।

अत्राद्ययोर्निरुद्दिष्टनिरनुज्ञयोरुत्कृष्टश्रावकयो श्रमणप्रायश्चित्तस्यार्ध भवति । तत निष्परिग्रहनिरारंभब्रह्मचारिणा त्रयाणा श्रावकाणा उत्कृष्ट श्रावकप्रायश्चित्तस्यार्ध भवतीत्यभिसम्बन्ध ॥ १३७ ॥

केचिदाहुर्विशेषेण त्रिष्वप्येतेषु शोधनम् ।
द्विभागोऽपि त्रिभागश्च चतुर्भाग यथाक्रमम् ॥ १३८ ॥

केचिदाहुः—केचित् कंचन आचार्या , आहु ब्रुवन्ति । विशेषेण—भेदान्तरेण । त्रिष्वप्येतेषु—एतेषु पूर्वोक्तेषु श्रावकेषु त्रिष्वपि उत्कृष्टमध्यमजघन्येषु । शोधन—प्रायश्चित्त भवति । द्विभागः— । अथानन्तरं त्रिभागोऽपि—तृतीयोऽश । चतुर्भाग—पाद । यथाक्रम—यथासंख्यं । साधुप्रायश्चित्तार्ध उत्कृष्टश्रावकयोर्भवति । श्रमणप्रायश्चित्तस्यैव तृतीयोऽश। मध्यमाना त्रयाणा श्रावकाणा भवति । ऋषिप्रायश्चित्तस्यैव चतुर्भागो जघन्याना षण्णा भवति ॥ १३८ ॥

षण्णां स्याच्छ्रावकाणां तु पचपातकसन्निधौ ।
महामहो जिनेन्द्राणा विशेषेण विशोधनम् ॥ १३९ ॥

षण्गा—जघन्यानां । स्यात्—भ[illegible]—उपासकानां । पचपातकसन्निधौ—गोवधस्त्रीहत्याबालघात[illegible]तसान्निपाते सति। महामहो जिनेन्द्राणां—सर्वज्ञाना[illegible] विशेषेण विशोधनं—अतिशयप्रायश्चित्तं भवति ॥ १[illegible] ॥

आद्यावन्ते च षष्ठं स्यात्क्षमणान्येकविंशतिः ।
प्रमादाद्गोवधे शुद्धिः कर्तव्या शल्यवर्जितैः ॥ १४० ॥

आदौ—प्रथम तावत् । अन्ते च—अवसाने च । षष्ठ स्यात्—षष्ठं प्रायश्चित्त भवति । मध्ये, क्षमणान्येकविंशतिः—एकविंशतिरुपवासाः सन्ति । पमादात्—कथंचित् । गोवधे—गोहत्याया । शुद्धिः—प्रायश्चित्तं । कर्तव्या—विधेया । शल्यवर्जिते निःशल्यैः निदानमिथ्यात्वमायाशल्यविरहितैः साद्भि· ॥ १४० ॥

सौवीरं पानमाम्नात पाणिपात्रे च पारणे ।
प्रत्याख्यानं समादाय कर्तव्यो नियमः पुनः ॥ १४१ ॥

सौर्वीर—काजिक । पान—पेय । तदा, आम्नात—कथित । तस्य प्राप्तप्रायश्चित्तस्य । पाणिपात्रे च पारणे—पारणे उपवासावसाने भोजनं शौच ? पाणिपात्रे करपुटे भवति । प्रत्याख्यान–चतुर्विधाहारनिवृत्ति । समादाय--गृहीत्वा । कर्तव्यो नियम. पुनः—पुनर्भूयश्च, नियम श्रावकप्रतिक्रमण, कर्तव्यो विधातव्य· ॥ १४१ ॥

त्रिसन्ध्य नियमस्यान्ते कुर्यात्प्राणशतत्रय ।
रात्रौ च प्रतिमां तिष्ठेन्निर्जितेन्द्रियसंहतिः ॥ १४२ ॥

त्रिसन्ध्य—सन्ध्यात्रये पूर्वाह्णे मध्यान्हेऽपराह्णे च नियम. कर्तव्य· । नियमस्यान्ते—नियमावसानेऽपि । कुर्यात्—विदध्यात । प्राणशतत्रयं—उछ्वासशतत्रयप्रमाणः कायोत्सर्ग. करणीयः । रात्रौ च—निशायामपि । प्रतिमां तिष्ठेत्—कायोत्सर्गं कुर्यात् । निर्जितेन्द्रियसहति.—संनिरुद्धपंचेन्द्रियसमूहः सन ॥ १४२ ॥

[illegible] लोकोत्तरपुरुषे हतौ ।
[illegible] द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥ १४३ ॥

द्विगुणं [illegible] श्चित्तं भवति । तस्मात्—ततो गोवधात् [illegible] हतौ—स्त्री योषित्, बाल· शिशुः, पुरुषः [illegible] हतौ सत्यां घाते सति । सदृष्टि-श्रावकर्षीणां—सदृष्टिः [illegible], श्रावको ब्राह्मणो लौकिकश्चेतरश्च, ऋषिश्च लौकिक· लोकोत्तरश्च, एतेषां विशेषपुरुषाणां हतौ सत्यां । द्विगुणं द्विगुणं ततः—ततः पूर्वोक्ताद्गोवधप्रायश्चित्तात् प्रत्येकं स्त्रीप्रभृतीनां विघाते प्रायश्चित्तं भवति । गोवधात् स्त्रीवधे द्विगुणं प्रायश्चित्तं । स्त्रीवधाद्बालवधे द्विगुणं । बालवधात् सामान्यमनुष्ये द्विगुणं । सामान्यमनुष्यवधात् पाषंडिषु द्विगुणं । पाषंडिवधाल्लौकिकब्राह्मणे द्विगुणं । लौकिकब्राह्मणवधादसंयतसम्यग्दृष्टौ द्विगुणं । असंयतसम्यग्दृष्टिवधात् संयतासंयते द्विगुणं । संयतासंयतवधात् निर्ग्रन्थसंयतौ विषये द्विगुणं प्रायश्चित्तं भवति ॥ १४३ ॥

कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां स्नपनं तेन च स्वयम् ।
स्नात्वोपध्यम्बराद्यं च दानं देयं चतुर्विधम् ॥ १४४ ॥

प्रायश्चित्तचरणानन्तरं, कृत्वा—विधाय । पूजां—महिमां । जिनेन्द्राणामर्हतां । स्नपनं—अभिषकं च कृत्वा । तेन च स्वयं स्नात्वा—तेन जिनेन्द्रस्नपनोदकेन, स्वयमात्मना, स्नात्वाभिषिच्य । उपध्यम्बराद्यं च, दानं देयं—उपधिः पुस्तककमण्डलुप्रतिलेखितप्रभृत्युपकरणं, अम्बरं वस्त्रं, आदिशब्देन पात्रप्रमुखं च दानमतिसर्जनं वस्त्याद्यं दातव्यं । चतुर्विधं—अभयदानमाहारदानं शास्त्रदानमौषधदानं चेति चतुष्प्रकारम् ॥ १४४ ॥

सुवर्णाद्यपि दातव्यं तदिच्छूनां यथोचितम् ।
शिरःक्षौरं च कर्तव्यं लोकचित्तजिघृक्षया ॥ १४५ ॥

सुवर्णाद्यपि—[illegible]व्यं—वितरणीयं ।
तदिच्छुना—तदर्थिना [illegible] । शिरःक्षौरं च
कर्तव्य—शिरसो मस्तक[illegible]पि कर्तव्यं
करणीयं । लोकचित्तजिघृ[illegible] चित्तस्य
मनस., जिघृक्षया गृहीतुमिच्छ[illegible]ान-
म्यप्रवृत्ते' । तत' स्ववेश्मप्रवेशो भ[illegible]

क्षुद्रजन्तुवधे क्षान्तिः षष्ठ[illegible]
गुणशिक्षाक्षतौ क्षान्तिर्दृग्ज्ञान[illegible]

क्षुद्रजन्तुवधे—क्षुद्रजन्तव' द्वीन्द्रियात्री[illegible]
विघाते कृते सति । क्षान्तिः—उपवास. प्रायश्चि[illegible]—
अन्येषा स्तेयस्वदारसंतोषपरिग्रहपरिमाणव्रताना च्यु[illegible] सति
षष्ठ प्रायश्चित्त भवति । (गुणशिक्षाक्षतौ क्षान्तिः—गुणव्र[illegible] शिक्षाव्रताना
च क्षतौ भगे सति क्षान्तिरुपवासः प्रायश्चित्त) । दृग्ज्ञाने जिनपूजनं—
दर्शन दृक् सम्यक्त्व तत्वार्थश्रद्धानलक्षण, अष्टशुद्धिविशुद्ध ज्ञानमागमः
तयोर्विषये जिनपूजन सर्वज्ञार्चन प्रायश्चित्तं भवति । सर्वोऽपि व्रतदोषः
पंचषष्ठिभेदो भवति । तद्यथा—

अतिक्रमो व्यतिक्रमोऽतिचारोऽनाचारोऽभोग इति । एषामर्थश्चायम-
भिधीयते जरद्गवन्यायेन, यथा कश्चिज्जरद्गव. महासस्यसमृद्धिसम्पन्नं क्षेत्रं
समवलोक्य तत्सीमसमीपप्रदेशे समवस्थितस्तत्प्रति स्पृहा सविधत्ते सोऽ-
तिक्रमः । पुनर्विवरोदरान्तरास्यं सप्रवेश्य ग्रासमेकं समाददामीत्यभिलाष-
कालुष्यमस्य व्यतिक्रमः । पुनरपि तद्वृत्तिसमुल्लघनमस्यातिचार । पुनरपि
क्षेत्रमध्यमधिगम्य ग्रासमेकं समादाय पुनरस्यापसरणमनाचार' । भूयोऽपि
नि.शंकतः क्षेत्रमध्यं प्रविश्य यथेष्टं संभक्षणं क्षेत्रप्रभुणा प्रचण्डदण्डताडन-
स्वीकार' अभोगकारः अभोग इति । एवं व्रतादिष्वपि योज्यं । उपरि

१ 'कृतपूजनं' पुस्तके पाठः । २ कसस्य. पाठ. पुस्तके नास्ति किन्तु कल्पितः ।

...ऽभोग, इत्येते ... निश्चीयते— ...ऽभोग इति ... पि पंच पचोच्चारणा ... भवन्ति । मूलोच्चारणाभिः ... ॥ १४६ ॥

... मांसमधूनि च ।
... षष्ठ दर्पतश्चेद्द्विषट्क्षमा ॥ १४७ ॥

...—रेत. क्षरणं, मूत्र प्रस्रवण, पुरीषमुच्चार । मद्यमास-मधूनि ... मद्य सुरा, मास पिशित, मधु माक्षिकादितानि च । अभक्ष्यं—अभोज्यं रुधिरास्थिचर्मप्रमुख च यदि । भक्षयेत्—अभ्यवहरति प्रमादेन तदानी तस्य जघन्योपासकस्य षष्ठ प्रायश्चित्त भवति । दर्पतश्चेत्—चेद्यदि, दर्पतोऽहकारात् पूर्वोक्तमश्नाति तदानी द्विषट्क्षमा—उपवासा द्विषट् द्वादश भवन्ति प्रायश्चित्तम् ॥ १४७ ॥

पचोदुम्बरसेवायां प्रमादेन विशोषणं ।
चाण्डालकारुकाणां षडन्नपाननिषेवणे ॥ १४८ ॥

पंचोदुम्बरसेवाया—पचोदुम्बराणि वटाश्वत्थोदुम्बरकटूमरविशेषफलानि तेषां दर्पताऽभ्यवहरणे कृते द्वादशोपवासाः । प्रमादेन च, विशोषणं—उपवास. प्रायश्चित्त । चाण्डालकारुकाणा षडन्नपाननिषेवणे—चांडाला-दीनां कारुकाणा कारूणा वरुटरजकादीना च अन्नपानयोर्निषेवणेऽनुभवने कृते सति षट् षड्विशोषणानि भवन्ति ॥ १४८ ॥

सद्योलंघि (वि) तगोघातवन्दीगृहसमाहतान् । १
कृमिदष्टं च संस्पृश्य क्षमणानि षडश्नुते ॥ १४९ ॥

---

१ सद्दष्टि इति मूल पाठ ।

सव्वो (घो) ह... ...व (इ) ति· गोघातः गोघातेन समाहतं यस्य स ... ...समाहतं वन्दीगृहेण समाहतं यस्य स वन्दी... ...च—कृमिक्षतमपि च। संस्पृश्य—स्पृष्ट्वा ... ...क्षमणानि उपवासान् अश्नुते प्राप्नोति। मृतक ... ...वन्दीगृहनिपतितं कृमिहतमित्येतान् यदि स्पृशति ... ...भवतीति भावार्थः ॥ १४९ ॥

सुतामातृभगिन्यादिचाण्डालीरभिगम्य च।
अश्नुवीतोपवासानां द्वात्रिंशतमसंशयं ॥ १५० ॥

सुतामातृभगिन्यादिचाडाली.—सुता दुहिता पुत्री, माता जननी, भगिनी स्वसा, आदिशब्देन मातृष्वसास्वश्रूस्नुषा इत्येताश्च, चाण्डालीः चाण्डालमातगवनिताद्याश्च। अभिगम्य—ससेव्य। अश्नुवीत—प्राप्नोति। उपवासाना द्वात्रिंशत—द्वात्रिंशदुपवासान्। असशयं—असंदिग्धम् ॥ १५० ॥

कारूणां भाजने भुक्ते पीतेऽथ मलशोधनम्।
विशोषा पच निर्दिष्टा छेददक्षैर्गणाधिपैः ॥ १५१ ॥

कारूणां—कारूणामभोज्याना। भाजने—पात्रे। भुक्ते—ऽभ्यवहृते सति। पीतेऽथ—अथवा पीते च सति। मलशोधन—प्रायश्चित्तं। विशोषाः पच—पच विशोषा विशोषणा। निर्दिष्टा·—कथिताः। छेददक्षै.—प्रायश्चित्तशास्त्रकुशलैः। गणाधिपैः—आचार्यवर्गै. ॥ १५१ ॥

जलानलप्रवशेन भृगुपाताच्छिशावपि।
बालसंन्यासत· प्रेते सद्यः शौचं गृहिव्रते ॥ १५२ ॥

जलानलप्रवेशेन—जलप्रवेशेन पानीये प्रवेश विधाय प्रेते सति, अनलप्रवेशेन अग्निप्रवेशेन च प्रेते। भृगुपातात्—पतनात् हेतुभूतात्। शिशावपि—बाले च प्रेते। बालसंन्यासतः—बालसंन्यासात् मिथ्यादृष्टिसन्यासेन च कृत्वा। प्रेते—स्वजने मृते। सद्य.—झटिति। शौचं—शुद्धि-

भवति— ... तत्क्षणादेव शुद्धिर्भवति ॥ १५ ...

ब्राह्मणक्षत्रविट्छूद्रा ...

दशाद्वादशभिः पक्षा ... ॥

ब्राह्मणक्षत्रविट्छूद्रा.— ... विशो वैश्या, शूद्रा आभीरकुंभकारतक्षकादयः । दिनैः—दिवसैः । शुद्ध्यन्ति—सूतकरहिता भवन्ति । पञ्चभि. (दशभि·) — ब्राह्मणा. । पंचभिर्दिवसैः क्षत्रियाः शुद्ध्यन्ति । द्वादशभि —दिवसैः वैश्या. शुद्ध्यन्ति । पक्षात्—पञ्चदशभिर्दिवसैः शूद्रा. स शुद्ध्यन्ति । यथासंख्यप्रयोगत —यथाक्रमयुक्त्या ॥१५३॥

कारिणो द्विधा' सिद्धा भोज्याभोज्य प्रभेदत ।

भोज्येष्वेव प्रदातव्यं सर्वदा क्षुल्लकव्रतं ॥ १५४ ॥

कारिण —कारवः । द्विविधा —द्विभेदाः । सिद्धाः—लोकत एव प्रसिद्धा. । भोज्या —यदन्नपान ब्राह्मणक्षत्रियविट्छूद्रा भुजन्ते । अभोज्या —तद्विपरीतलक्षणाः । भोज्येष्वेव प्रदातव्या क्षुल्लकदीक्षा नापरेषु ॥१५४॥

क्षुल्लकेष्वेकक वस्त्र नान्यन्न स्थितिभोजनम् ।

आतापनादि योगोऽपि तेषां शश्वन्निषिध्यते ॥ १५५ ॥

क्षुल्लकेषु—सर्वोत्कृष्टश्रावकेषु । एकक—एकं । वस्त्रं—अम्बर पटः । नान्यत्—अन्यद्वितीयं वस्त्र न भवति । न स्थितिभोजन—उद्भीभूयाभ्यवहारोऽपि न भवति । आतापनादियोगोऽपि—आतापनवृक्षमूलाभ्रावकाशयोगश्च । तेषां—क्षुल्लकाना । शश्वत्—सर्वकालं । निषिध्यते—प्रतिषिध्यते ॥ १५५ ॥

---

१ अत्र क्षत्रब्राह्मणविट्छूद्रा इत्येवं रूपेण पाठेन भवितव्यं । अन्यथा छेदपिण्ड-छेदशास्त्र इति शास्त्रद्वयविरोध स्यात् ।

२ अत्रास्य पाठ पुस्तकाच्च्युत इत्यवभाति अत· दशभि दिवसै ब्राह्मणा शुद्ध्यन्ति इत्येवं रूपेण पाठेन भवितव्यम् ।

क्षौरं ... ऽथ भाजने।
कौपी... कीर्तितः॥ १५६॥

क्षौर—क्षुरक... विदध्यात्। लोच वा—वालोत्पाटन वा ...—पाणौ पाणिपात्रे, भुंक्ते वल्मते, अथ अथ... के। कौपीनमात्रतंत्रः—कौपीनमात्र तत्रं य... खण्डमण्डितकटीतटः। असौ—पूर्वोक्तविधान... क्षुल्लक—उत्कृष्टाणुव्रतधारी। परिकीर्तितः—समुद्दिष्ट॥ १५६॥

सद्दृष्टिपुरुषाः श... र्मोद्दाहाद्धि बिभ्यति।
लोभमोहादिभि... षणं चिन्तयन्ति न॥ १५७॥

सद्दृष्टिपुरुषा—सम्यग्दृष्टिमनुष्या। शश्वत्—सर्वकाल। धर्मोद्दाहात्—धर्म... नते: सकाशात्। हि—यर...। बिभ्यति—अभित्रसन्ति। अतो हेतोः, ...भमोहादिभिर्धर्मदूषण चि... न्ति न—लोभेन परिग्रहमूर्च्छया, मोहेन स्नेहेन, आदिशब्देन द्वेषादिभिरपि दोषविशेषैः कृत्वा, धर्मदूषण शासनकलंकं, न चिन्तयन्ति नाभिवाञ्छन्ति॥ १५७॥

प्रायश्चित्तं न यत्रोक्तं भावकालक्रियादिक।
गुरूद्दिष्टं विजानीयात्तत्प्रनालिकयानया॥ १५८॥

प्रायश्चित्त—विशोधनं। न यत्रोक्तं—यत्र यस्मिन् दोषविशेषे नोक्त नाभिहितं। भावकालक्रियादिक—भावः परिणामः, कालस्त्रिविध शीतकाल उष्णकालः साधारणकाल इति, क्रिया करणं सचित्ताचित्तमिश्रद्रव्यप्रतिसेवनं, आदिशब्देन क्षेत्रोत्साहादि च यत्र नोपदिष्टं। गुरूद्दिष्टं विजानीयात्—तत्सर्वं गुरूद्दिष्टमाचार्यवर्योपदेशतः विजानीयादधिगच्छेत्। प्रनालिकयानया—अनया एतया प्रनालिकया पद्धत्या दिशा॥ १५८॥

उपयोगाद्व्रतारोपात् पश्चात्तापात्प्रकाशनात्।
पादांशार्धतया सर्वं पापं नश्येद्विरागतः॥ १५९॥

उपयोगात्—तात्पर्यात् ... ताऽध्यारोहणात् । पश्चात्तापात्—अनुतापात् ... दोषप्रकटीकरणाच्च हेतोः । पादांशार्धतया—... कृत्वा कृतदोषस्य चतुर्भागतया विनाशो भवति ... अर्धांशेन च नाशः स्यात् । सर्व—निःशे... नश्येत्—विनश्यति पलायते । विरागत. -... रागः तस्माद्विरागतः विरागात् वैराग्यात् ... शुद्धभावपरंपरावशात् सकलमलकलङ्कपरिपातो भवति ॥ १५९ ॥

अवद्ययोगविरतिपरिणामो विनिश्चयात् ।
प्रायश्चित्त समुद्दिष्टमेतत्तु व्यवहारतः ॥ १६० ॥

अवद्ययोगविरतिपरिणाम —सर्वसावद्यसम्बन्धविनिवृत्तस्य य एव (?) । विनिश्चयात्—निश्चयनयापेक्षया शुद्धनयात् परमार्थोदयादित्यर्थः । प्रायश्चित्त—मलहरण । समुद्दिष्ट—अनूदित । एतत्तु—यत्पुनरालोच्यते प्रदीयते विधीयते च प्रायश्चित्त तत्सर्व । व्यवहारतः—व्यवहारनयापेक्षया भवति । तौ च व्यवहारनिश्चयनयौ अनादिबद्धावन्योन्यापेक्षौ च सन्तौ सम्यग्व्यपदेशमुपलभेताम् ॥ १६० ॥

प्रायश्चित्त प्रमादेऽदः प्रदातव्यं मुनीश्वरैः ।
अपि मूलं प्रकर्तव्य बहुशो बहुशो भवेत् ॥ १६१ ॥

प्रायश्चित्त—विशोधनं । प्रमादेऽदः—अदः एतत् आगमविनिर्दिष्टं, प्रमादे कथचिद्दोषसम्पन्ने सति भवति । प्रदातव्य—वितरितव्य । मुनीश्वरैः—आचार्यैः । अपि मूल प्रकर्तव्य—मूलमपि कर्तव्य विधातव्य । बहुशो बहुशः—अनेकशोऽनेकशो दोषमाचरतः सत साधो । भवेत्—स्यात्॥ १६१॥

गृहीतव्यं त्रयाणां न हितं स्वस्मै समीप्सुभिः ।
नरेन्द्रस्यापि वैद्यस्य गुरोर्हितविधायिन. ॥ १६२ ॥

गृहीतव्यं—गो [illegible] पुरुषाणां गोपनं न भवति। हितं स्व [illegible] मनुष्यैः। नरेन्द्रस्य—राज्ञ.। अ [illegible] —आचार्यस्य च। हित-विधायिन [illegible] ॥

[illegible] स्तावन्ति च्छेदनान्यपि।

[illegible] कर्तुमहो ! मते ॥ १६३ ॥

[illegible] येयुः। परीणामाः—संप्रवृत्तय। तावन्ति—तत्परिमाणा [illegible] छेदनान्यपि—प्रायश्चित्तानि च भवन्ति। अतःकारणात्, प्रायश्चित्तं समर्थ. क—क. पुरुष', प्रायश्चित्तं विशुद्धि, समर्थः शक्तः। दातुं—वितरितु। कर्तु—विधातु च। अहो—आश्चर्यं। मते—शासने आगमे ॥ १६३ ॥

प्रायश्चित्तमिदं सम्यग्युंजानाः पुरुषाः परं।

लभन्ते निर्मलां कीर्तिं सौख्यं स्वर्गापवर्गजम् ॥ १६४ ॥

प्रायश्चित्त—छेदन। सम्यक्—अनुविधानेन। युंजानाः—सम्बन्धन्तः सन्त'। पुरुषाः—मनुष्याः। पर—प्रधानमग्र्य च। लभन्ते—अवाप्नुवन्ति। निर्मला—शुद्धा निष्कलङ्कां। कीर्तिं—यश'। सौख्य—सुखं च लभन्ते। स्वर्गापवर्गज—अणिमादिकाष्टगुणैश्वर्यसयुक्तं दिव्यमैन्द्रादि, अपवर्गज मोक्षज निखिलकर्ममलपटलविकलस्य सकलविमलकेवलज्ञानादि-गुणात्मकस्यात्मनो विशुद्धरूपावस्थानस्वभावमोक्षोत्पन्नं च सौख्यं लभन्ते ॥ १६४ ॥

चूलिकासहितो लेशात् प्रायश्चित्तसमुच्चयः।

नानाचार्यमतान्यैक्याद्वोक्तुकामेन वर्णितः ॥ १६५ ॥

चूलिकासहितः—चूलिकासमन्वितः। लेशात्—अंशात् उद्देशात् संक्षेपात्। प्रायश्चित्तसमुच्चय.—प्रायश्चित्तसमुच्चयाभिधान. प्रायश्चित्तसंक्षेपाख्यो

श्री[illegible]

[illegible]

जिनचन्द्र प्रण[illegible]त ।
प्रायश्चित्तं [illegible]कानां विशुद्धये ॥ १ ॥

मकार[illegible] कृत्वा पश्चाद्विरक्तभाक् ।
तत्त्यज[illegible]त प्रायश्चित्तमिदं स्फुटम् ॥
द्वादशानशनान्येकवारभुक्तानि चापि वै ।
पंचाशदभिषेकाख्या (ख्य) दानानि च पृथक् पृथक् ॥
कलशाभिषेकश्चैको गौरिका च प्रदीयते ।
पुष्पाणां च सहस्राणि चतुर्विंशतिरेव च ॥
तथा द्वे तीर्थयात्रे स्तो गन्धं पलैचतुष्टयम् ।
संघपूजां च निष्काणि त्रीणि कुर्याद्विचक्षणः ॥ २ ॥
प्रमादात् सेवते यस्तु मकारत्रितयं नरः ।
प्रायश्चित्तं ब्रुवे तस्य विशुद्धौ पूर्ववत् क्रमात् ॥
अभिषेकाश्च तावन्तः पुष्पपंचसहस्रकं ।
पलद्वयमितं गन्धं तीर्थयात्रे तथा द्विके ॥ ३ ॥
पचोदुम्बरसेवाभाग्यस्तस्य च विशोधनम् ।
चत्वार उपवासा स्युर्द्वादशाश्चैकभुक्तयः ॥
कलशाभिषेकाश्चैकोऽभिषेको द्वादशोदिताः ।
सहस्राणि च चत्वारि कुसुमानि भवन्ति वै ॥

---

१ लिखितपुस्तके सर्वत्र अस्मादग्रे पलस्थाने फलेति पाठो वर्तते ।

स्फुटं स्नानानि [illegible] ॥
अभिषेका [illegible]
पंचाशद्गु[illegible]
पलानि द[illegible]
द्वे तथा ती[illegible] ॥ ७ ॥
अग्निपातादि[illegible]त ।
तद्दोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्तमिदं भवेत् ॥
पंचविंशतिः संख्याता उपवासा बुधैरिह ।
पंचाशदेकभक्तानि द्विशती भोजयेज्जनान् ॥
त्रयोऽभिषेका. कलशैर्गावस्तिस्रः प्रकीर्तिता ।
पंचामृताभिषेकाश्च पचदश निवेदिताः ॥
पंचसप्ततिश्चाख्याता मोक्कूलाश्च परिस्फुट ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि पुष्पाणां चन्दनस्य च ॥
पलं दश समाख्यातास्तीर्थयात्राश्च पंच वै ।
निष्कैश्च पचदशभिः संघपूजां प्रकल्पयेत् ॥ ८ ॥
सर्पादिभक्षणाद्वज्रपातादचेतनादपि ।
घोटकाद्युपरिष्टाच्च पंचत्वे समुपागते ॥
पंचोपवासा जायते एकभक्तानि विंशतिः ।
कलशाभिषेकौ स्यातां दश पंचामृतैस्तथा ॥
पंचविंशतिरुद्दिष्टा मोक्कूलाश्चाभिषेकका ।
चत्वारिंशज्जनानां स्यादाहारैः परितर्पणम् ॥
द्वे गावौ दशगन्धस्य पलानि कुसुमानि च ।
तथा पंक्तिसहस्राणि तीर्थयात्रास्तु पंच वै ॥
निष्कत्रयेण कल्प्येत संघपूजा हितैषिणा ॥ ९ ॥

ब्रह्महत्यादिकं य...
तच्छुद्धये त्रिश... ...ः ॥
एकभक्तानि पं...
दशामृतैर्मोक्कू... ...ः ॥
द्वे गावौ भुक्ति... ...।
सहस्राणि दशैव स्युः ... ...मात् ॥
संघार्चा पंचभिर्निष्कै... ... वै ॥ १० ॥
ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां शूद्रादिगृहसंगतः ।
अन्नपान भवेन्मिश्रं यदि शुद्धिरियं पुनः ॥
एकोऽभिषेक कलशैः पंच पंचामृतैस्तथा ।
मोक्कूला द्वादश(शा)श्चैकभुक्तानि त्रिंशदुच्चकैः ॥
अयुतार्धं च पुष्पाणां श्रीखण्ड तु पलद्वयं ।
एकैकतीर्थयात्राया निष्कत्रितयपूजनम् ॥ ११ ॥
मिथ्यादृगशु (ग्छूद) मिश्रान्नपानादि च भवेद्यदि ।
प्रायश्चित्तं भवेदत्राभिषेकत्रितयं घटैः ॥
पंचामृताभिषेकाः स्युर्दश वै पंचविंशति ।
मोक्कूला गौरिहैका स्यादुपवासा दशोदिताः ॥
एकभक्तानि त्रिंशत्तु पुष्पाणामयुतं भवेत् ।
श्रीखण्डस्य पलं पंचाहारदानशतं भवेत् ॥
तीर्थयात्राश्च पंच स्युः पंचनिष्कप्रपूजनम् ॥ १२ ॥
जननीतनुजादीनां चाण्डालादिस्त्रियामपि ।
संभोगे सति शुद्ध्यर्थं पंचाशदुपवासकाः ॥
भवेत् पंचशती त्वेकभक्तानां तु परिस्फुटं ।
अभिषेकास्त्रयः कुम्भैः दश पंचामृतैः स्मृताः ॥

पंचाशन्तो[illegible]ला द्वे च गावौ [illegible] ।
कुसुमानां [illegible]
पंचदश प[illegible]
संघपूजा [illegible]
पंचकारुगृहान्त[illegible] ।
पंचोपवासा दश च [illegible]मृतैः ॥
दश स्नानानि चान्यानि दश विंशतिभुक्तयः ।
पुष्पाण्येकसहस्रं स्यान्मुनिभिः परिकीर्तिताः (तं) ॥ १४ ॥
तद्गृहे भोजनं चाष्टौ उपवासा प्रकीर्तिता ।
कुसुमानि सहस्राणि पंच स्नानानि विंशतिः ॥
भुक्तिदानानि पंचाशच्छ्रीखण्डस्य पलद्वयं ॥ १५ ॥
मरणे तु प्रसूतौ च सूतकं पचवासरात् ।
क्षत्रियाणां द्विजानां च वासराणि दशैव तु ॥
दिनानि द्वादशैव स्यात्रिवर्णानां परिस्फुटं ।
शूद्राणां पक्षमात्रं तत् परतः शुद्धिरीरिता ॥ १६ ॥
स्नानानि द्वादशोक्तानि एकभक्तानि षट् तथा ।
पलानि त्रीणि गन्धस्य गृहशुद्धिरितीरिता ॥
मुखेऽस्थिदर्शने भुक्तावुपवासास्त्रयः स्मृताः ।
एकभुक्तानि चत्वारि द्वादशस्तपनानि च ॥
पुष्पाणां च सहस्राणि षड्गन्धपलद्वयं ॥ १७ ॥
हस्तेऽस्थिदर्शने जातेऽनशनद्वितयं स्मृतं ।
एकभुक्तानि चत्वारि स्नपनाष्टकमीरितम् ॥
अष्टावाहारदानानि तथा सुमनसां पुनः ।
स्युः सहस्राणि चत्वारि श्रीखण्डस्य पलद्वयं ॥ १८ ॥

स्तनभारादिना बालो म्रियते यदि केनचित् ।
पंचादशोपवासाश्च त्रिंशत्पंचाधिकानि तु ॥

एकभक्तानि कलशैरेकैकं स्नपनं भवेत् ।
दश पंचामृतैश्चान्ये द्वात्रिंशत्परिकीर्तिता. ॥

पलाष्टकं च गन्धस्य कुसुमानि तु विंशतिः ।
सहस्राणि च धेन्वेका पच निष्कैः प्रपूजनं ॥ २९ ॥

प्रायश्चित्त य. करोत्येतदेवं
जाते दोषे तत्प्रशान्त्यर्थमार्य. ।
राष्ट्रस्यासौ भूमिपस्यात्मनोऽपि
स्वास्थ्यावस्था वा स्थितिं सन्तनोति ॥ ३० ॥

इत्यकलङ्कस्वामिनिरूपितं प्रायश्चित्त

समाप्तम् ।

छेदपिण्डच्छेदशास्त्रयोः

अकाराद्यनुक्रमः

प्रायश्चित्तचूलिक -प्रायश्चित्त-ग्रन्थयोरकाराद्यनुक्रमणिका